



# एक नीच ट्रैजेडी

मृणाल पाण्डे



राजकमल प्रकाशन

नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु 18 00

© मणाल पाण्डे

प्रथम संस्करण 1981

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्राइवट लिमिटेड,  
8, नेताजी सुभाष भाग, नयी दिल्ली 110002

मुद्रक रुचिका प्रिंटर्स द्वारा मॉडर्न प्रिंटर्स, दिल्ली 110032

आवरण रामकुमार

EK NEECH TRAGEDY

Short Stories by Mrinal Pardey

पिस गया वह भीतरी  
औ' बाहरी दो कठिन पाटो बीच  
ऐसी ट्रैजेडी है नीच ।।

—ग मा मुक्तिबोध



## धम

बफ	9
अँघेरे से अँघेरे तब	15
दोपहर मे मौत	26
यानी कि एक बात थी	36
बिच्यो	46
पितृदाय	56
मुत्ते की मौत	73
प्रतिशोध	80
एक नीच टूजेडी	93



## वर्ष

नौकर लालटेन जलाकर तिपाई पर रख गया था। हल्की भूरी-नारंगी रोगनी में ठण्ड स उबड़-बैठे व तीना और भी सिबुड़े सिबुड़ाये लग रहे थे, एक्दम कुबड़े बीना-जैसे। पर पीछे दीवार पर पड़ती उही की परछाईयाँ न मालूम कितनी बड़ी होकर रोगनी में घूम रही थी, जैसे उह बड़े-बड़े तीन राक्षस दबोचने आ रहे ह। सहमकर वह अँगोठी के और पास सिसप आयी बिजली की लाइन इस इलाके में टूटी तो हफ्ते भर की छुट्टी अँगोठी के कोयले जल-जलकर एक्दम ही राख हुए जा रहे थे। उसका मन हुआ नौकर को पुकारकर कह कि बाड़ा मुलगा लाय, पर चुप्पी तोड़ने की कल्पना ही इतनी भयावह थी कि वह चुपचाप बुझते टूकड़े तिनके से कुरेदने लगी। 'जहँ धुआँ आता है,' छोट ने आँखें सिकोड़ी, पीछे परछाई का हण्डा-सा सिर हिला— मत कर ना '

उसने तिनका कोने की ठण्डी राख में गाड़ दिया और फिर चुप बैठ गया। घुटनों पर ठोड़ी टिकाये टिकाये उसकी छाया भी चुप। वँसा आश्चर्य है, उसने सोचा, जितनी कम रोगनी होती है उतनी ही बड़ी छाया, और अगर वह लालटेन भी न हो तो? तब तो शायद उनकी एक्सार होती परछाईयाँ ही परछाईया बच रहगी, खुद वह तो गायब ही हो जायेंगे।

उठकर उसने चुपचाप बत्ती कुछ उमसा दी बड़ा कुछ बुदबुदाया कुद-कर उसने बत्ती फिर बम कर दी और बैठ गयी कोयलों में तो शायद कुछ



बचा नहीं था

‘जरा देखकर था ना उधर ।’ बड़ा मनुहार भरे स्वर में फुसफुसाया ।

‘तू ही क्यों नहीं चला जाता ?’ हिंस्र स्वर में वह फुसफुसायी ।

‘तुझे तो कुछ नहीं कहेंगे भाई ।’

‘तो तुझे ही बौन चीरकर खा जायेंगे ।’

‘प्लीज ।’

स्वार्थी हो तुम दोनों ।’ डर और गुस्से से फुसफुसाहट कुछ ऊँची हो गयी ।

‘श्व प्लीज ।’ छोटे ने आल पर से बाल हटाये ।

धाम् । कुछ टूटा शायद । तीनों चौककर स्तब्ध हो गये, परछाइयों के सिर छत पर एक दूसरे से जुड़े थे ।

‘चाय की बेतली है शायद ।’ उसने बताया ।

‘उहूँक, कोई किताब है ।’ बड़े ने खुद तिनके से जाग कुरेदना चालू कर दिया ।

‘मा ने फेंकी होगी ।’ छोटे की बड़ी-बड़ी गोल-गोल आंखों में कौतूहल था ।

‘तो क्या ?’ उसने बड़प्पन से कहा, ‘पिछली बार तो तकिय को चीरकर सारे कमरे में पर ही-पर फैला दिये थे ।

हो सकता है बाबा ने फेंका हो, वे भी तो भूल जाते हैं कि मा का दिमाग गुस्से में ।’ बड़ा उसकी तरेरी आंखों की घुड़की से सहमकर चुप हो गया ।

मा का दिमाग क्या ? एँ ? क्या ?’ छोटे ने कौतूहल से राख फूँकी ।

‘कुछ नहीं, तेरा सिर ।’ उसने उबती राख से परेशान होकर दुपट्टा झटकाया— ‘जा, तू ही दख आ ना जाकर धीरे-से जाना समझा ?’

भीतर मत घुसना । दूर कमरे में लड़ाई की ऊँची बेसुरी आवाजें फिर आ रही थीं । छोटे ने बड़े को ताका— ‘चला जा यार ।’

बड़े ने ठोड़ी खुजायी ।

छोटे बं जाते ही दानो पास पास सिमट आय।

हृदयर देती है कभी-कभी माँ भी, समय नहीं आता इसे सीधे  
बोलना भी नहीं आता क्या ?" उसकी तत्त्व आवाज आँसुओं में फँस गयी।

'उसका ही बसूर घोंडी है, बाबा भी तो "

"हाँ, सो तो है ही," वह कुछ देर चुप रही "कोयले भी बुझ गये  
हैं।"

"दानादीन को पुकारो, दूसरे डाल लायगा।"

'नहीं बाबा, पुकारने की हिम्मत मेरी नहीं है, फिर कही नये कोयले  
देखकर पाइ पड़ी फिजूलखर्ची पर, तो ?"

बाहर बर्फ की खूब तेज आंधी चल रही थी एकदम धुप्प अँधेरा था,  
कभी-कभी बिजली चमकती, तो चारा ओर आसकास खड़े बाले-बाले देव-  
दार कुछ क्षण को चमककर धुँक जाते सिहरकर उसने शाल और भीच  
लिया—"चार दिन से यही हाल है।"

"तिस पर बिजली भी ठप्प " बड़े ने हाँ में-हाँ मिलायी।

फिर काफी देर कमरे में चुप्पी रही सिर्फ कभी-कभार तेज शोको  
में तालटन काँपती, तो परछाईयाँ फड़फड़ाने लगती।

"यह छोटा कहाँ रह गया ?" उस अचानक छोटे की फिर हुई, उसकी  
परछाई का कोना खाली था, कभी बड़े का हाथ कबूतर के आकार में उधर  
मँडरा जाता, या उससे शाल का कोना

"कहीं बेवकूफ भीतर तो नहीं खला गया कमरे के ?"

"तमाचा लायेगा गधा।" बड़े ने सिर झुका लिया।

"तुझे क्या, उसे चाहे वे दोनों नोच डालें।" बड़े के अनमनेपन से वह  
चिढ़ गयी।

"भेजा तो तूने ही, बड़े ने बड़ी आसानी से सारा दारोमदार उसी पर  
डाल दिया।

"हाँ-हाँ, जैसे तुझे ता उधर से कोई मतलब ही नहीं। यूँ। बेईमान।"  
उसकी आँखें भर आयी।

"जब उनका गुस्ता हम पर क्या उतारती है बेवकूफ।" बड़ा कुछ  
खिसिया-सा भी गया—"आ जायेगा से, आ ही गया।"

छोटा झुका झुका दबे पाव गैलरी में आ रहा था चोरा की तरह  
 'क्या क्या हाल है ?' उत्सुकता और उत्तेजना से वह हकलाने  
 लगी ।

"अरे छोड़ ना ।" आन्जिजी से छोटे ने हाथ छुड़ा लिया, "बस क्या  
 होगा । मा वैठी रो रही है और बाबा ऐसा मुह बनाये लेट है " उसने  
 कुप्पा सा मुँह फुलाया ।

'कर क्या रहे है ?' बड़ा चुका ।

"करेंगे क्या । लेते हैं ।" छोटा अपनी विशिष्टता का एहसास पाकर  
 अकड़ रहा था, 'छत ताक रहे है भकुओ की तरह ।"

"एह हिट ।" उसने धमकाया, पर छोटे की उपमा ॥ बड़ा और वह  
 हँसने लगे ।

"लग तो रह हैं वैस ही," छोटा हँसी का समयन पाकर कुछ-कुछ उद्दण्ड  
 हो चला था "शायद सोचते है कि कि वो बड़े ग्रेट लग रह हैं ।'

'हिटलर जैसे ।'

खि खि खि —तीनों हँसने लगे दबे दबे ।

ढम —फिर आवाज आयी ज्या कुछ गिरा हो । समन कातर हाकर  
 बड़े की ताका, बड़े न आखें झुका ली ।

"फिर ?"

"शायद कोई टहनी टूटी हो ।' छोटे ने सात्वना दी । फौरन तीनों ने  
 यही कारण स्वीकार कर लिया ।

"सो तो है ही " उसने सिर हिलाया, "ऐसी बफ, रामसिंह चौकीदार  
 कहता था बहुत कम पडती है । बड़े बड़े पेड तक उखड़ जाते है आधी में ।  
 धरो के टीन उड़ उड़कर राह चलता का घायल कर देते हैं "

भयानक चित्र से आक्रांत तीनों कुछ देर चुप रह । छोटे ने मोठ तोड़ा,  
 ' दातादीन कहता था अब कुहरा छोट रहा है कल तक गिरना एक जायगा ।'

"शायद " बड़े ने आग बुरेदने की व्यथता से भिन होकर तिनका दूर  
 फेंक दिया ' इससे ज्यादा पड़ेगी भी क्या ? चार दिन तो हो गय रक् "

रककर गिरत ।”

“एकदम सब ढक गया है, सीढिया तक ।” उसने खिन्नता से शाल झटकारा ।

“अच्छा तो अगर कल तक बर्फ गिरना रुक जाये, तो खूब धूप आयेगी ना ?” छोटे ने एक झोले को बुरेदा ।

“जरूर ।” बड़े ने उँगलियों की राख फूकी, “पर गधे, तू उस धूप में करेगा क्या ?”

“क्यों ?” छोटा चमका । लगता था वह बड़े को नीच लेगा, उसकी छाया भी तैश में डोलकर घूमी ।

हह, पैर तो बर्फ में धँस जायेंगे, खेनेगा क्या बाहर, खान् !” बड़े को तिल तिलकर छोटे ने धूप भरे कल्पना महल तोड़ना अच्छा लग रहा था ।

“जो भी है, कम-से कम धूप से कुछ गरमाहट तो होगी ही ।” छोटा हार मानने की कतई तैयार न था ।

उसने एक बार मोचा कि क्षणभे में हस्तक्षेप करे, पर जान कैसी अवश-सी करनेवाली यकान बदन में भर गयी थी । उसने दुखता सिर घुटनी में छिपा लिया । बर्फ खूब गिर रही थी ।

बड़े ने टाँगें पसारकर पीठ के पीछे कूशन लगा लिया ।

“उस धूप से गर्मी थोड़े ही आयेगी पामल ! एक तो बर्फ ऊपर से गिरेगा पाला बस ऐसी कढाके की सहीं पड़ेगी कि धूप में बैठना क्या, सूरज स भी चिपक जायेगा तो भी गरमाहट नहीं आयेगी, समझा ? बर्फ गिरकर धूप निकल भी आये, तो कुछ फक नहीं पड़ता । सब बेसा ही ठण्डा और जमा हुआ रहेगा ।”

बाँपती लौ में बड़े की कुबड़ी परछाई और भी दैत्याकार लग रही थी ।

“और उस पर कहीं फिर बर्फ पड़ गयी तो बस छट्टी ।” बच्चा क्रूरता से हँसा ।

छोटा रुआँसा होकर चुप हो गया ।

दूसरे कमरे में अब बिल्कुल शांति थी कल तक शायद कुछ कुछ

ठीक-ठाक भी उन्हें। उबतावर उसने फिर सिर घुटना में दे दिया।

“अब चुपचाप हैं।” बड़ा भेदभरे स्वर में फुमफुमाया।

“उह, हागे।” उसने उपेक्षा से फुह फेर लिया। मन तो बरता था कि उस कमरे में आंघोरी की तरह घुसकर उन्हें उन्हें उन्हें उस उनमें क्या करना, हफ्ते भरके बाद तो स्कूल खुल ही जायेंगे। बड़ा कुछ अप्रतिभ-सा हो गया था। अब वह छोट की ओर मुड़ा—“बस को दायद फिर स मुर्गा पड़ेगा।”

बड़े और छोटे ने भेदभरी हँसी से उसे ताका—वह प्रतिमा सी निरक्षर बैठी रही। हालाँकि उसे पता था कि उसे हँसना चाहिए था यह उनका पुराना विद्रूप था। ऐसे भारी साप्ताहिक पगडा के बाद जब उनके माँ-बाप में मुलह होती, तो निशानी यही थी। माँ खुद बैठकर उम्दा मुगा पकाती, पापा का ग्लास भी खुद ही भरती और एक हिस्टीरिक्ल डर से मुक्त तीना भाई-बहन पुराने पारिवारिक मजाकों पर बेवजह जोरा से ठहाके लगात

पर बड़े का विद्रूप उसे आज पता नहीं क्या नहीं गुदगुदा पा रहा था जाने लालटेन की पीली रोगनी में ही कुछ था या छाटे की दुबली कलाई की भड़ी परछाई में कि वह न हँसी, न मुसकरायी। बस चुपचाप घुटना में सिर दिय रही, जस जम गयी हो।

## अँधेरे से अँधेरे तक

चदमा मेज पर रखकर मनोहर ने आखें बन्द कर ली ।

खदकते पत्तीले के ढकने की तरह कमरा उबलती चुप्पी में धीम-धीमे काँप रहा था । मनोहर ने धके हुए बदन को ढीला छोड़ दिया । कमरा अब उसे लिये दिये चुपचाप रेंगन लगा था । अण्डे सती मुर्गी की तरह तनिक हिलकर उसने अपने बदन का आकार बिस्तरे की नमाई में फिट किया, जैसे लम्बी यात्रा की घुस्सात में सीट पर जम रहा हो । कमरे की गति धीरे-धीरे बढ़ने लगी थी । रेलगाड़ी के बराबर चलते जगल की तरह अँधेरा कुछ देर उसकी बगल-बगल दोड़ता रहा, फिर वह जगल खुल गया और उसने एक भूरी फुर्ती से ऊपर नीचे होती एक चिटखी सूखी जमीन को साय चलते पाया । खेतों पर की फसल अब की कट चुकी थी । बस जडात दुबले बदन पर खड़े रोगटों की तरह छोटे छोटे सूखे डण्डल भर सड़े थे । घरो के पिघलाते से ढूहनुमा आकार, दुबली पिथकती पगडण्डिया, नील धुए में सँरते-सँ मानव-आकार

मनोहर ने झटके से सिर उठाया । अँधेरे के जाल को काटती-फाटती फोन की विर्रती घण्टी वही बजने लगी थी । एक उसास से वह उठँग गया । वत्ती जला ले क्या ? दीवार के परे बुढ़िया मिली स्मिथ फोन पर किसी से ऊँची आवाज में बतियाने लगी थी । अच्छा, क्या बहरे लोग सचमुच दूसरो को भी बहरा ही समझते होंगे ? वह हँसने लगा । यही तो उसकी बमजोरी

है। ऐन मौजे पर कोई अप्रासंगिक बान वाली बिल्ली की तरह सामने छूट भागती है। उसका पेट गुडगुडाने लगा था। अबानन उस घाद आया कि आफिम म सौटवर उसने कुछ ग्याया नर नहीं है। झूमे पेट मे गैसें उथल पुथल हाने लगी थी। बत्ती जलाकर वह कुछ-कुछ लंगडाता हुआ रमोई म घुस गया। घुटने का पुराना फँसकर फिर परेशान करा लगा है। उम्र का तफाजा, धाबूजी कहते। उम्र की एक सीमा पार कर लेने के बाद दूसरा वो उनकी ढलती उम्र का सयाल दिलाना शायद कुछ विचित्र-सी तमत्ती देता है।

मनोहर न कलाई पर नजर डाली। कुल साठे सात बजे थे, पर बाहर अँधेरा देखकर लगता था कि दसक बजे हामे। बाहर तीखी हवा बिल्डिंग की पुन्ना दीवारों से टकराती, पेडा-पत्तों को चीघती हुट्टाय जा रही थी। बिल्डिंग की सब लिडकियों फसकर बन्द थी, पदें लिचे हुए। कहीं-कहीं सधिया से छनकर भीतर रोशनी की एक महीन बोर-सी चलक जाती थी बस। बाहर बर्फीली हवा की निपट शब्दहीन अमानुषिक सीत्कार। कितने तीक्ष्ण से जाड़े की रात। म ढलती उम्र का खयाल आता-जाता है।

पाकों, सड़कों, बसा पर रोज देमे हारार चेहरे। बूडे जाकार, पुरानी बेंचा पर हताश भीमे कौआ की तरह पात म बैठे हुए। अँधेरी लिडकियों से दृष्टिहीन सूनेपन मे ताकते झुर्रीदार चेहरे, कापती चाभिया से धुधले ताले तलाशत दुबले निस्सहाम हाथ। जितनी बार वह बूडे का लिफाफा फेंकने जाता है बुडिया स्मिथ को छिपकर ताकत पाता है। पहले पदों के पोछे स एक झुर्रीदार हाथ गोजर की तरह रँगता आता है, फिर मोटे चश्मे के पीछे और भी बडोल और निष्प्रभ लगती मोतिमाबिदी आखें। क्या करती होगी वह सारे दिन ? तीन साल से वह यहा रह रहा है। और तीन साल स वह उसे इसी तरह दख रहा है। सिफ एक धार उस रोज उसकी आवाज सुनी थी, जब वह डैस्क बलक से अपना अखबार लेने खडा था और अपनी पतली चीकती बुडाई आवाज मे मिली स्मिथ भीतर के कमरे म मनेजर से कुछ शिकायत कर रही थी। शायद वह अपने फ्लैट के ऊपर रहनेवाले इतालवी परिवार के बारे म कुछ कह रही थी—‘ रात भर घमाघम, बच्चों की भाग दौड, कोई सोये भी तो कैसे ! हमन भी पूरा किराया दिया है है कि

नहीं ?”

वह अखबार लेकर मुड़ ही रहा था कि अपनी लाठी टेकती बुढ़िया भी मँनेजर के बमरे से निकली। मनोहर को दसकर साप की तरह वह फुफकारी थी—“दीज डर्टी फौरनस।” मनोहर का मन हुआ था कि उसकी लाठी छीनकर छितरे सपेंद बालों से दीखती उसकी गुलाबी गजी चाद पर दे मारे। पर फिर दुमकटी छिपकली की तरह लाठी के बल रँगती बुढ़िया लिपट म बुदबुदाती घुस गयी थी और दरवाजा बन्द हो गया था—भव।

डबलरोटी के दो टुकड़ों के बीच खीरे की कतली दबाता मनोहर फिर हँसने लगा। अब सोचता है, तो लगता है कि उस पर गुस्सा करना मे कोई फुल ही नहीं थी। पर फिर भी। सड़विच कुतरते कुतरते वह मय जूतों के पलग पर लट गया। बहुत दिन से उसके बाप की चिट्ठी भी नहीं आयी। खैर आयेगी, जरूर आयगी। बड़ाई सौ पेंशन पर रिटायर हुए अपने बाप की कामधेनु जो है वह। उसे नहो, तो क्या अपनी तीन ठो घेटियों को सिलेंगे, जि होने पहले अपने देहेज और फिर अपनी सामाना जचगियों की माफन उन्हें गाय की तरह दुह लिया था। चिट्ठी की बात से याद आया, इस बार उन्होंने कुछ ब्लेड मँगवाये हैं। अब अगले पासल मे भेज देगा, हालांकि पिछली बार उनका वह पाइप का फागमाइनी तम्बाकू और गम मोने जो भेजे थे, उनकी पहुँच अभी तक नहीं आयी। मालूम नहीं, मिले भी कि रास्ते में ही वही क्या ठिकाना।

उसके आफिस के एकमात्र हिंदुस्तानी कारिदे सरदार हरबिंदर की सरदारनी का कहना है कि यहाँ का कुछ ठिकाना नहीं। “कतई नहीं जी, जिस मुलक मे आदमी आदमी से बात ना करे, उसकी भली चलायी। ते खरीद करोस्त बन जाओ, तो चुपचाप गापिय बाट म सामान रखो, चुपचाप पैसा द बे बाहर चले आओ। छूटो हुई। अपने मुलक मे, पाई जी, कुजहे यनिये से तब्यार ही चाहे होती हो, बात तो हो जाती थी, है कि नहीं ?”

‘है कि नहीं ?’ मनोहर ने अँधेरे से पूछा। पर अँधेरा ओदी चुप्पी मे स्थिर बँठा रहा। इधर अक्सर वह अपने को अँधेरे मे अपने आपसे खोलता पाता है। ‘गुरू-गुरू म पार्क म बँठी बुदबुदाती बुढ़िया या अवेले बार चलाते



लोगो को अपने-आपसे बोलते देखकर उसे बड़ा चौतुक् होता था, पता नहीं कब उसने खुद भी

सरदारजी का बूढ़ा भुर्रीदार चेहरा डबडबा आया था—“दिन भर अपार्टमेण्ट की खिडकियां पर बैठे बैठे अतजार करो कि दार जी आये कि नहीं। कभी बरफ पड़न लगी, तो धुन धुन होनी की ट्रैफिक नाल तो कुछ नहीं हो गया। सात साल हो गये जी इतने रहते रहते, पर पडोसियों नाल हलो शालो छड के बात ही नी होणी। उहें आफिस जाणा ते बच्चे बेबीसिटर के घर। ते जैसे महा के अमरीकी तंस अपने हिंदोस्तानी। मैं तो बहँदी कि चलो जी बहुत हुआ अब, लौट चलो ”

“लौट तो चलेंगे,” सरदारजी अपना मजबूत स्याह पजा चिमगादड़ के परो की तरह फैलाते हैं ते कल ही चलो, मैं भी दखुखी लौट चलू पर बच्चों का भी सोचा है ?”

जापानी नायलोन की साड़ी की कोर से आँसू का कतरा पाछकर सरदारजीजी गहरी उसास लेती हैं—‘रब्व दी मरजी अब पडे हैं मो पडे हैं।’

“पाई जी, ये बात ये लेडीज समझती नहीं, पर आप ही कहो ” मनोहर के चेहरे से फिकसा और लहसुन की ग ॥ टकराती है—“पहले पहल आये थे, तो सोचा, चलो लडकियों की शादी सैक पैसा हो जाये, तो लौट चलेंगे। फेर उनकी शादिया कर दी, त सोचा कि दिल्ली मे घर बणवा लें, सिर छिपाने का आसरा तो हो जाय सो भी बणवाया। अब जाने की सोचने लगे थे, के बहा से बच्चे हमे लिखते हैं, हम तुम बहा अपन पास बुला लो हमारे इस गरीब देग म तो न तरबकी का चानस है न पसा। अब आप ही बोलो जी ये हम उठे जायें, कि उह एदर लगवा दें ? अपना क्या है पाँच दसेब साल की बात है, सो बट ही जायेंगे, पर उनकी तो लाइफ का स्वाल है।”

बोलो !’ मनोहर ने जँघरे से बहा। अँधेरा नहा बोला। बोलना भी क्या था।

मनोहर ने आँखें खोल ली। हाथ में बचा सैण्डविच का टुकड़ा यत्नश्रम से खाया। उठकर उसने वह टुकड़ा कूड़ेदान में फेंक दिया और हाथ धोने लगा। शुरू-शुरू में कुछ दिन बहुत चाब से उसने भी इधर-उधर से हिंदुस्तानी मसाले खरीदे थे—तल भूनकर अदोजन खाना भी अपनी तरह का पकाने की कोशिश की थी पर अब उसमें नी कोई तुक नहीं मालूम पड़ती।

तुक मालूम ही किसमें पड़ती है? उसने बाथरूम के दीशे में अपना अघेड़ होता चेहरा देखा। खरियत है, इस हफ्ते किसी पार्टी में नहीं जाना है, बरना शाम को भी दाढ़ी बनानी पड़ती। यूँ वह खास किसी में मिलता-जुलता भी नहीं। जब बहुत ही जरूरी हो जाये, तभी जाता है, पर एक बार जाकर दो हफ्ते को साला मुह बदजायका हो जाता है। रेशमी सोफे, रेशमी पर्दे, हिंदुस्तानी तसवीरें, फूलदान, बातिब, मधुबनी जैसे साले घर नहीं, म्यूजियम हैं। मद्रासी सिल्क और चमकीले स्याह भारी जूड़ावाली गदरई सम्पन्न गहिणिया पके केले के मुक्ये की तरह सटी सटी बैठी हुई। लगता है, पुतला के महल में घुस आया है। पार्टी? हुँह! काल के अघपफे फोड़े की तरह मनोहर का अकेलापन फिर टीसता है। वह गदन इधर-उधर घुमाकर तलाश रहा है। बमन और बीस्टन करोडो डालर की किसी हिंदुस्तानी प्रोजेक्ट की चर्चा में सहज व्यस्त है। अपर्णा गिल हन्गा का हाथ से मुर्गा खाना खिला रही है, नव मेहता किसी को 'यूयाक' की उस दुकान का पता दे रही है, जहाँ से वह हिंदुस्तान जाकर इस्तेमाल करने के लिए बिजली के उपकरण सस्ते दामों पर खरीदती है—'बक्यूम क्लीनर जखर ले जाना भाई, उसके बिना कार्पेट साफ नहीं होते। और कुकिंग रेंज गैस की बेहतर "

अनतराशी दाढ़ी की तरह बिल्स्की और फ्रेंच ड्रि की गंध मनोहर का चेहरा छूती है—"क्या हाल है?" अपना लम्बा सलीकेदार माउन और मोतिया की माला संभालती फँनी उसके बगल में पक्ष पर बैठ गयी है। मनोहर बुदबुदाकर फ्लिप्टाचार की बातें करता है, पर फँनी अपनी री में बोलती ही जा रही है—"फिर वहाँ से हम गये सजुराहो। ऐसा बुरा सफर

वभी नहा किया, पर आसह मन्दिर जो देने, तो आँखें खुल गयी। मानना पडगा तुम लागा के पुरखे बापी गुरु लोग थे, हर मुआमले म, ही ही-ही।' नग भरी हैमी म जेली की तरह थल-थल होनी हुई फँनी।

‘क्या बक रही है?’ मेजवान की सुदर पत्नी उसस धीरे स पूछती है।

‘आजकल बहुत पीने लगी है। क्या करे, न घर न परिवार, उस पर उम्र भी ढल चली है। कल फोन पर रो रोकर माफी माँगी।’

लो थोड़ा पुसाव और लो, खास हमार हिन्दुस्तानी पटना के बासमती है ”

मनोहर आभाकारिता स प्लेट भर सता है।

ऊपर के प्लेट मे किसी ने जोरा से नीचो मोल म्यूजिक का रेकार्ड लगा रखा है—‘ओऽ आह माह बहनीह ’ छटपटाती घुटी आवाज अँधेरी की और भी कानर और असह्य बनाती हुई। कल फिर बलबे से बफ हटाकर कार निवालनी पड़ेगी—मनोहर ने उक्ताकर सोचा। बफ। बफ। बफ। साला मौसम है कि अचानक वह रुक गया। उसे याद आया, गमियो मे भूज के पलग से पीठ की घमोरियाँ खुजाते बाबूजी भी रात भर बड़बड़ाते रहत थे—‘फिर वही लू, लू, लू साली गर्मी है कि ’ किससे लडता हागा आदमी? तुम से, कि मौसम से?

क्या करे फिर वह? चित लेटकर मनाहर ने अँधेरी छत पर आँखें टिका दी। क्या करे फिर वह? क्या वापस लौट जाय? पर वहाँ? उस घर मे, जहाँ एक बरसाती पर का अपना कमरा और गुमल छोड़कर सारा घर बाबूजी ने किराये पर उठा रखा है? परिवार? उसकी सदा सहमी धबरायी यकी भाइदार शादीशुदा बहनें, जिनके बाबूजी स लेकर समुराल तक फैले अस्तित्व मे कही बहुत सहज भाव स एक आदर भरा कोना उसके लिए सुरक्षित था, जो उतना ही चुप्पा और मनहूस था जितना उसका यह अँधेरा कमरा। वंधे दस्तूर की तरह हर बार उसका देश लोटन पर उसकी बहनें अपनी रक्वीन मदी अटचिया से निवाल निकालकर मुमकराती पोडगिया की तसबीरें गुलदस्ते की तरह चुपचाप उसके आग फैला देती हैं, और उसके बाबूजी अपने हर पेंशनयाप्ता मित्र को उसकी तेनखाह साँढे

सात रुपये से गुणा करके बताने को निकल जाते हैं और वह चुपचाप माथ लायी कोई पपरवैक किताब पढ़ने का नाटय करता पढ़े दीवारों के पीछे की फुसफुसाहटें सुनता-अनसुनता लेटा रह जाता है। जवले। चुप।

उसकी बहना के बच्चे नये रिलीने एक-दूसरे को दिसा रट हैं वहनं अपनी साडिया—“बहुत देता है भाग्य है, सोने के मुलक की नौकरी यहा क्या मन लगगा हाँ, दाने दाने को तो अब तोड़ मट डालना अभी लड लड के रम, फिर मामाजी अगले साल नही तारयेये समझे ”

‘फाटो दिलायी ? कुछ कहा ? क्या पता, वही कोई कर ली ” दबी हंसी फिर बाबूजी के जूतों की आवाज आती है और बातचीत दब जाती है।

“चाय बनाकर दी उसको ? महाराजिा से कहना मुझसे टीन की पत्ती ले जायेगी, चूरावाली ने बनाये ” ढलती शाम नश्वर की तरह दुखते अकेलेपन को छू रही है।

मनोहर लिडफी के बाहर झाँकता है। परिचित खुशबुएँ आकार, ध्वनिया, गली में खेलते बच्चों की किलकती चीखें। गजक का एक ठेला गुजरता है। अभकती किरासन की धुएँदार कुप्पी। उसके गले में मछली का काटा सा कुछ फँसता जाता है। बाबूजी बार-बार उसे आगाह कर गये हैं कि वह कतई यह सब ‘डर्टी स्ट्रीट फूड’ न चखे। वहाँ के साफ-सुखरे कीटाणु रहित खाने के बाद इसे खाना तो हैपेटाइसिस योतना है। सबसेना बाबू बता रहे थे कि अक्सर ये लोग सड़क पर गिरी गजक भी बीनकर बेच देते हैं। वहा से हि दुस्तान आते वकत गामा ग्लोब्यूलीन का इजेक्शन तो मनोहर ने ले ही लिया होगा। अपनी हैलथ का खयाल करना अमरीकी ही जानता है

कुछ देर दोनों चुप बठे रहते हैं। उसकी बहन दो प्यालों में चाय रख-कर चुपचाप चली गयी है।

‘पी लो पी ला ठण्डी हो जायगी।’ बाबूजी कहते हैं और अपने प्याले से चुस्पी लेते हैं—‘अच्छी चाय बहुत महँगी होती जा रही है।’ वे बताते हैं फिर कुछ रुककर जोड़ते हैं—‘क्या मही महँगा हो रहा है। लूट

मची है लूट । ” वह सहमति में सिर हिलाता है । कुछ कहना भी है शायद । भोतर ऐसा खालीपन भर गया है कि लगता है, किसी ने छुरी से छील छील कर चेतना का आखिरी टुकड़ा सब निवाल लिया हो ।

हमन सोचा है ” बाबूजी जुमले को वजनदार बनाने के लिए क्षण भर को रक्त हो जब भी उन्हें कोई सास अनाउसमेष्ट करना होता है व यही टकनीक इस्तेमाल करते हैं । बचपन से उसे याद है । विषय चाहे उसकी पढ़ाई हो या उसकी बहनो की शादी ।

‘हमन सोचा है ’ वह कहते हैं, “कि घर में एक बिग जीर निक्सबा लेते हैं । घोपाल बाबू का कहना है कि एरिया में किराये भी बढ़ रहे हैं, और किरायेदारा की तो कोई कमी नहीं । फिर परिवार की चीज है, अन्त में परिवार के ही काम आयगी वभी न-वभी ।”

कभी न-कभी—वह चुपचाप मन में दुहराता है । प्याले में उसकी चाय ठण्डी हो गयी है । वह एक सास में निगल जाता है । “ठण्डी हो गयी होगी, दूसरा प्याला मँगवाऊँ ?” बाबूजी पूछते हैं । वह मना कर देता है और फिर बाबूजी उस एस्टीमेट का ब्योरा बन लगते हैं ।

उठकर जाते हुए बाबूजी क्षण भर को दहलीज पर रुकते हैं—“हाँ, तुम्हारी एक चिट्ठी आयी है ।” एक क्षण सिफाफा उसके पोरो के पास रुका रहता है फिर वह घाम लेता है । बाबूजी के चेहरे पर एक बहुत धियेदरी समसदारी का ‘हम मालूम-है-बड़ा-पर-खैर’ वाला भाव है । उसका मन होता है कि वह सिफाफा खोलकर फटी धोती की तरह उनके सामने फैला दे कि देख लो, क्या लिखा है, पर इससे पेशतर वे मुड़ चुके होते हैं ।

“प्रायवसी बहुत बड़ी चीज है नमदा बाबू ” वे पाइप जलाकर छत पर बैठे अपने दोस्तों व समूह में कहते हैं । जब से वह विदेश गया है उन्होंने पान सिगरेट छोड़कर विदेशी तम्बाकू पाइप में भरकर पीना चालू कर दिया है । “बड़ी डर्टी नटिव हैबिट है पान खाना ” वह उसकी बड़ी बहन से कहेंगे—‘बस बचरे की तरह चाबा और पिचसे धूँक दिया ।’ और उसकी बहन बच्चे का गूल्हा यपकाती सहमति में सर हिला देगी—‘सो तो है ।’

कैरिन कहती थी कि उसके मनोविश्लेषक की राय में उसका अँधेरे से लगाव उसके डरावने और अनेके वचन की निशानी है। उजाला होना शुरू हुआ नहीं कि वह पदों खींचने लगती है। उसका कहना था कि उजाले में वह बेहद उधड़ा जोर असह्यम महसूस करती है।

"तुम और तुम्हारी अमरीकी पेचीदमियाँ ।" वह उसे चिढ़ाता था—  
 "तुम साले बस चले, नो मनोविश्लेषक के सोफे पर ही जामा, सोओ और उम्र पिकाल दो ।" कैरिन कुछ नहीं कहती। चुपचाप मुसकराती सिगरेट पीती रहती है। उसका पियक्कड़ बाप वह सात साल की थी, तभी घर छोड़कर निकल गया था और फिर लौटा नहीं।

"जानने हो, मैंने और मेरे भाई ने क्या किया ? मैं तब सात की थी, टामी छह का। हम दोनों चुपचाप पिछवाड़े से बगल के ड्रग स्टोर में गये और अपनी जमा-पूजी खच कर दो बड़े बड़े आइसक्रीम मँगवाये, उस पियक्कड़ से छुटकारा पाने की खुशी में। कमीना सूरज जगने के साथ पीना चालू कर देता था, फिर नाली में गिरने तक वही। मेरी माँ अपने आशिकों के समूह में मस्त रहती थी। डेरीवाला, साण्डीवाला, कचड़ा जमा करने-वाली ट्रक का ड्राइवर—सभी। टामी और मैं गली से गुजरते, तो बुढ़ियें हमें देखकर ऐसे जुबान चटखारती, जैसे हम राक्षसों की औलाद हों। यूँ हमें अपनी माँ के इन मिलनेवालों से कोई गिला नहीं था, क्योंकि हर बार वे हम मुट्ठी-भर रजगारी दकर आइसक्रीम खाने भेज देते। साण्डीवाला तो अपन कान हिलाकर हमें खूब हँसाता भी था।"

बाद की उसकी माँ ने उन्हीं में से किसी एक से शादी भी कर ली थी और अपने सबरे कुत्ते की जडाऊ चेन थामे सुनहरे बालों का विंग लगाये कभी-कभार आकर करिन को देख जाती थी। उसके जाते ही कैरिन उसके अपाटमेण्ट में तूफान की तरह आ घुसती—  
 "आज बुढ़िया का कुत्ता फिर मेरे पाम पर पेशाब कर गया। जगली बार कमवस्त ने टाँग उठायी, तो उसे खिडकी से बाहर फेंक दूगी।"

मनोहर की अधपिपी-मिगरट से वह गहरा कड़बलेती—  
 "क्या कहने आयी थी ? वही दोष का रोना माना। मेरा सीतेला बाप एक वेट्रेस के पीछे भाग रहा है—टामी के डाक्टर का कहना है कि अभी दो साल उपचार

और चलेगा—उसने सेल में आधे दाम में फर का मोट पारीदा है—उसके गुदों का दद फिर बढ गया है। कमबख्त, मुह बढजायका घर जाती है। फिर भी मैं कुछ कहती क्या नहीं ? सच पूछा मनाहर, तो उसमें बालन की भी इच्छा नहीं होती। पिछले इक्कीस साल हम दोनों बनेरह जूझे हैं, पर अब पता नहीं क्या। गुरसा भी मुझे उससे जुड़ा नहीं पाता। एक उत्र पर पहुँचकर न चोट पहुँचाने की इच्छा रह जाती है न चोट मारने की। शायद बुढ़ापे की पहली निशाभी है, क्या ?” वह मुमनराती है। शायद राती, तो मनाहर इतना असहज नहीं महसूस करता।

वैरिन की चिटठी मरी बिडिया की तरह उमकी बिताय में नीचे हवा में फड़फड़ाती है। उससे मौतले बाप न पान किया था कि उसकी माँ को मानसिक अस्पताल में दाखिल कराना पड़ा है। रेजर से बान तक गला चीर कर आरमहत्या की कोशिश की थी उसने। “उसने सोचा कि शायद मैं उसे जाकर देखना चाहूँगी, इसलिए कह रहा था अभी कुछ दिन न जाऊँ, अभी बहुत बुरी हालत में है घाव में छप्पन टाँक सके हैं। पर मैं तो खुद ही नहीं जानती कि मैं जाना भी चाहती हूँ या नहीं। क्या पूछूँगी उससे वहाँ जरूर ? कि कितना खून निकला ? मुझे तो लगता है कि उसने गला इतना ही काटा होगा कि शोहरत हो जाये, पर दम न निकले तबीयत काफी उबता गयी है इस सबसे। सोच रही हूँ, नीररी छोड़कर कुछ महीन यूरोप घसी जाऊँ। हैजा-बेचन और गर्मी का डर न होता, तो शायद एक चक्कर हिंदुस्तान का भी लगा लेती। तुमने क्या निश्चय किया ? बापस लौट रहे हो कि वही घर-गहस्थी जमाकर एकदम से फमिली मैं ?”

बायूजी इधर बीच-बीच में बिलायत देख सकने की अपनी इच्छा की चर्चा कर देते हैं। निमला जिज्जी सकुचाते हुए फिर जिज्जे छेड़ती है— त्रिपाठीजी फिर आये थे पूछन को। बड़ी अच्छी लडकी है। खूब मोरी लम्बी मोटर भी चला लेती है। अंग्रेजी स्कूल की पढी है। वहाँ काम आयागा यह सब। उसके तो भाग खल जायेंगे। तुम्हारे ही जवाब को रके हैं।’

मनोहर ने आँखें खोल ली। नल का वाशर सराब हो गया है शायद। टप।

टप। टप। लगातार पानी गिर रहा है। हर रोज सोचता है, ईश्वर कसब से बहेगा, पर फिर एक्कदम दिमाग से उतर जाता है। बरिन होनी तो बहता—याद दिला द। बरिन के जान के बाद से बिल्डिंग भी ता जान बया अपरिचित—सी लगने लगी है। पना नहीं कहाँ होगी आजकल। बीच-बीच में एक गीन पोस्टवाड नर भेज देती है। उस दिन सोफे के पीछे उसका एक पुराना स्टाफ पडा मिला, तो काफी दर अजीब खासी गाली-मा लगता रहा। अजीब बात है। बरिन को यह ऐसे मिस कर रहा है। बरिन। क्या पता ? नहीं। यह यह आखिरी बेवकूफी नहीं करेगा। बस ही क्या कम परेसानियाँ हैं कि ऊपर स यह भावुकता और

अंधेरा कमरा फिर धीरे धीरे हिलने लगा है। कुछ ही देर में जल्लाटे से उसे लिय दिय फिर उसी परिचित दिशा को चल देगा। जाने क्या यह अंधेरा कमरा फिर फिर उसे अपने पके ग्राहर की टिमटिमाती बस्तिया के बीच लडा कर देता है और राहर हाथ खींचकर उसे उसके बाप के हवाले कर देता है। बरसाती के उस छोटे-से कमरे में यह परिचित गंधी-आबाजा से बिधा लडा है। राहर अपन तमाम बहबेपन और मुतहा रगा के साथ जाडे की घूप की तरह घीर घीर उसकी दुलती मज्जा में घँसता जा रहा है। लिडकी के बाहर से बकील साहब की हडिडहा गाय उसे धूरे की तरह निर्विकार भाव से परलती है। यह गला खँकारता है बाबूजी से कहने के लिए कि भवान का नया बिग किराये पर उठाने की जरूरत नहीं जब यह लौटेगा तो कम-से-कम रहने को एक हिस्सा तो

बाबूजी बजिनिया तम्बानू का लुसबूभरा बस लेते हुए कुर्सी पर पसर चुके हैं—“दरअसल अमरीकी काम भी जम कर करता है और रिलैक्स भी। जभी तो उसका मुल्क इतनी तरबकी पर है। अब हम सोचते हैं कि तुम कहाँ एक घर भी खरीद लो। धीरे धीरे कभी भगवान की इच्छा हुई, तो एक चक्कर हम भी उधर हो आयेंगे।”



## दोपहर में मौत

पहले कुछ देर तो उसकी समझ में ही नहीं आया कि घण्टीवाला बटन कौन सा होगा ? तीना बटन एक स ही आकार के और एक-मे ही चीकट थे । धूप से तपी आखें सिकोड़ते वह तनिक छाँव में सरक आया और फिर उसने बटन को दोबारा गौर से देखा । मैल की पर्तों के नीचे एक बटन पर घण्टी का आकार बना था । दबान से वही एक ककश ध्वनि गूजी टर । भरभरा कर गिरता एक नल बंद हुआ—कौन ? दूर दरवाजे के पीछे में एक नारी कण्ठ । वह कुछ चिढ़ सा गया । बंद दरवाजे के परे क्या हर किसी को अपना नाम भर कहकर परिचय दिया जा सकता है ? वह कह भी दे कि उसका नाम जनादन है तो फिर पूछेंग—कौन जनादन ? अजब बेवकूफी भरा सवाल है । वह कोई फेरीवाला भी तो नहीं कि धधे का नाम ही बताकर जवाब पा ले ।

चिलकती धूप थी । इधर लम्बी बीमारी से उठने के बाद से धूप में थोड़ा चलने से भी सिर चक्कराने लगता है । उसने रुमाल में माथा पाछा । वैसे सोचो तो घर के बागिदा का क्या दोप ? ग्यारह बजे दुपहर का पुमती बज्ज था । इस समय पड़ोसिया या फेरीवाला के अलावा इन धुपले उनींदे मजाना में झाँकने आता ही कौन होगा ? गनीमन है इस समय घर में कोई था, वना यह ता वह वक्त है जब जलम घरनियाँ अक्कर दरवाजे पर ताला मारकर घर की धुली धोतिया और धिसी चप्पला से लम हो बाहर मिलने

मिलाने चल देनी है। उसने आस गडोस के मकाना पर नजर फिरायी। कामबाजी लोग के परे होने पर रोज घीमे घीमे यह गहन मायावी लोक इन गलिया, अहाता मे स्वयमेव उग आता है—असस बुदबुदाती माँओ, घूप में पुराने ऊन की उघड़ी लच्छिया की तरह पड़ी बिल्लियो, और भुनगे से भिनकते छोटे छोटे बच्चा का रहस्यमय लोक, जिसे उसने अपनी लम्बी बीमारी के दौरान की पहली मतबे जान पाया था, उन लम्बे छह महीनो के दौरान जब वह अपने नीम अँधेरे कमर मे बगल की गलियो, कमरा और अहाता से उठनी इन अजीब ध्वनियो को सुनता पडा रहता था। दवाई के नसे और बीमारी की कमजोरी के दरम्यान एक वेनाम भ्रूण की तरह तिरता हुआ। न स्त्री न पुरुष, बस एक धकी घिसी देह भर। रोज का वही क्रम था। खसर खसर धके बिवाईदार पैरा को घिसटाती पुरानी चप्पलें, उठती या बैठती गैहा के उच्छवास जो चटखते जोडा और पुराने अनबूझ दवों का फूटते हैं—हाय मरी अम्मा! फिर बतकहियाँ जिनके सुर पानी में ऊभचूम होती बसला की तरह ऊँचे नीचे होते रहते रहस्यमय स्त्री रोग, अफवाहे, अटकलें फिर ककग हँसियाँ जिनका क्रूर नपुंसक आक्रोश उसके सहू को स्याह कर देता था ख ख ख जैसे लकड़बग्घे हँसते हैं। तबिय के सहारे उठंगा या दब स फटता भाषा गँधात लिहाफ में गुडुप किय वह इस दुनिया को अपनी नाडिया मे निरन्तर रिसता हुआ पाता था। कभी उसे अचरज भी होता था अपनी श्लथ देह के बावजूद रह आये अपने दिमाग के चौकन्नेपन पर। ख ख ख। एक विकराल हँसी जिसके पीछे कोई आनंद या उछाह नहा एक पूरी की पूरी प्रवर्चित जाति का इतिहास एक शिरा की तरह धडकता है—नीला गेंदला चैतन्य। धप, धप धप।

यही कुछ क्षण हान हैं नायद, जब एक औरत पूरी तरह एक जीव होती है। चतन्य अतमुन्नी, लापरवाह। वह रेवडी या मृगफली या सिफ घक्का दकर भी अपने भिनभिनाते बच्चा को इस दम जलम हँकाल सक्ती है। वह इस वक्त किसी की जिम्मेदार नहीं—न उल्ट सीधे पडे जूता को न जूठे बतगा की न मुस हुए बिस्तरा की। इस वक्त वह सिफ दूमरी औरत की आखो में सीधा देखनी है, उन अतल गहराइया मे, जहा उसकी अपनी सबलीफ अपने अपमान और अपना आक्रोश व्याकुल गेरवी दहाडा गूजते

फिरत हैं। धीमे धीमे सर से सर जोड़े वे अपनी-अपनी नीली गुम चोटा पर से आवरण हटाती हैं। बहुत धीम धीमे, अपनी जोम ॥ अपनी पीड़ा को चाटते, चूमते हुए—एक उत्कट क्रोध, एक उत्कट आनन्द म, जसे घामल जानवर करते हैं।

उस मार बीमारी से ठीक होन पर जब उसने परिचितता ने कहा था कि उसका पुनर्जन्म हुआ है, तो उस लगा था कि वे पूरी तरह से गलत नहा थे। पूरे छह महीने उस पाताल नगरी म बितान के बाद अब वह सिर से पैर तक अपने आपको बतई बदला हुआ पाता था। हालांकि ऊपर स मुब बैसा-बा-बैसा ही था, ओर अब तो मदन भरते जाने से कपड़े भी उतने झूलते-से नहीं प्रतीत होते थे। उसने घड़ी देखी, पाँच मिनट गुजर चुक थ। क्या करे ? घण्टी फिर बजाय क्या ? नम्बर तो यही था, पर नाम की प्लेट कही नहीं थी। इस तिमजिले मकान मे कहीं होया रघु का घर ? काफी पहले एक बार आया था तो शायद नीचे की ही मजिल मे थे थ लोग। उसे अपनी माददास्त की कमजारी पर खीझ हुई। उसने नम्बर फिर पढ़ा—नम्बर तो ठीक ही था। उसने फिर बटन पर उँगली रखी।

इस बार दरवाजा जल्दी खुल गया। एक तरुणी माँ एक हाथ से बच्चे को सटाये खड़ी थी। साड़ी की टेढ़ी मेढ़ी सल्लोस लगता था कि जल्दी जरदी ही लपेटी गयी होगी। बच्चा सीसिये मे लिपटा ठिठुर रहा था। वह अब कचा गया—“भाफ कीजियेगा, आपको तकलीफ दी मैं राघव शर्मा का घर बूढ़ रहा था।”

‘नम्बर ? नम्बर तो यही है, वो लोग ऊपर की मजिल मे हैं क्या नाम बताया आपने ?’

‘मेरा ? जी जनादन मैं राघव का सहपाठी था इधर म जा रहा था तो सोचा—अभी पिछले महीने उसकी चिट्ठी आयी थी कि बर जाडो में हिंदुस्तान आ रहा है, यही मिलेगा—पहले तो नीचे की ही मजिल मे थे न ?’

स्त्री के चेहरे पर जदी आँखें कुछ देर उस निनिमेष ताकती रही जसे कुछ पढ़ रही हो। उसे अबजब सा लगा, गला खँखारकर उसने बुगट का ऊपरी बटन बेवजह बंद किया—सॉरी, आपको काम के बीच से ”

उसके हाथ न बच्चे की दिना मे एक शिथिल इंगित बिया—“पर राघव तो नहीं रहे ” स्त्री जैसे उमरे पीछे लडे बिसी से कह रही थी। बच्चा छोड़ा, एक सिहरन उसे कंपा गयी—“कब ? कसे ?”

स्त्री ने एक ध्यस्त अनमनेपन स बच्चे के साथे पर सीलिया रगड़ा—  
“अभी पन्द्रह एक दिन हुए। हिंदुस्तान आने की बात तो थी, पर उससे हफ्ता भर पहले ही पार का एकसीडेण्ट हो गया ”

“राम राम।”

‘हो, बुरा तो सभी को लगा, पर क्या बिया जाय। ऊपर ही हैं चाचाजी चल जाइय। बाड़ा कम देवती हैं ये। चाचाजी भी आत ही होंगे, गीता मुनन गय थे।’ वह फिर बच्चे को रगड़न लगी थी, बच्चा चोर नजरा न आगतुक को दखता हुआ अपन मगपन की शम और माँ के आघातो के बीच होले होले हिल रहा था। उस अपनी बीमारी के दौरान पदों से उल्लवकर भाँपते चेहरे याद आय। बुतूटल, डर, ममखरी। फिर बच्चे का चेहरा धुन गया। वह उमरी दुनिया का वाशिदा नहीं था वह जान गया था। धीमे हाथा स दरवाजा मिठाकर वह सीढिया की तरफ मुड़ा। लम्बा जीना चल खाता ऊपर तक चला गया था। सीढिया स महीना स झाडू नहीं लगी थी—धूल भर बाला के गुच्छे जैसे रंगी आकार जाला स लटके थे, दीवारें हाथा का सहारा लेते लेते चीकट हो चली थी, पूरी ऊँचाई मे एक भुरभुरी गंध व्याप्त थी, उस तकलीफ और हताशा की गंध जो न तो फूट कर बहती है, न ही पयराकर बिलाती है, पर धीमे धीमे नीचा को गलाती रहती है। लगातार।

एक क्षण वह हाठ भीचे अनिश्चय मे नीचे लडा रहा, फिर ऊपर चढ़ने लगा। दरवाजा तो खुला हुआ था। छोटा-सा दीवानखाना था, बमुश्किल उन समाम सस्ते रेक्सीन के सोफो, तिपाइयो, प्लास्टिक के भाँडो, फूलो, तसवीरा, पुरान कलेण्डरा को समोता हुआ। कमरे मे भी वही क्षरबुरी धूलिहा गन्ध थी। उसने धीमे से दरवाजे का हाथ से टकोरा। “कोन ?” चप्पल की खनर खसर के साथ घिसटती सी एक महिला भीतर आयी। मोटे चश्मे के पीछे उनकी आँखें विहृत और बेढोल लगती थी, ज्या किसी ने गला दाव दिया हो और आँखें बाहर को उछल पडी हो। उसने अप्रतिभ हो पैर पर

यजन बदला—राघव नहीं रहे—

“आप कौन ?” महिला की गदन शिथिलता से टेढ़ी हुई जैस कि उन्हें तक्लीफ होती हो किसी भी मानवीय हरकत से। उनके प्रश्न में जिज्ञासा नहीं, एक उलझन सी थी—अब किसलिए ?

“जी, मेरा नाम जनादन है। राघव और मैं होस्टल में ”

“हाँ, बैठिये, य आत होये।” उन्होंने कुर्सी की तरफ इशारा किया। वह बैठ गया। सोफे का स्प्रिंग भयावह रूप से पुराना था—बैठन ही मानो पीठ जमीन से सट गयी हो। उसकी रीढ़ में पुरानी टीस उठी, पर इस समय उसको लेकर कुछ करना बिलावजह अभद्रता होती। नहीं ?

‘मैं, मुझे तो कुछ पना ही नहीं था अभी नीचे उन्होंने बताया—कब, कैसे ? रघु और बेसब तो आनेवाले थे न ?’

“हाँ, भाग्य है और क्या।” महिला की मोटी चिबुक मानो गले में और गहरी होकर धँस गयी। जनादन ने पहली बार गौर किया कि शरीर के मोटापे के बावजूद महिला के चेहरे पर बीमारी की अस्वास्थ्यकर चाँद्यों थी। दोनों आँखों के नीचे स्याह दायरे थे जो चश्मे से नीचे तक उतर आये थे। वे बोली तो उसने देखा सामने के तीन चार दाँत भी गायब थे, मुस हुए कपड़े, बिवाईदार गुरदरे पाँव, हाथ। कत्ताइयो में घिसी हुई—मी काँच की चूड़ियाँ, खुदक हताश नगी दृष्टि जिसमें कोई अपेक्षा नहीं कोई प्रायना नहीं। वह सिहर गया।—‘आनेवाले तो सभी थे। जेनी भी बच्चे भी, हवाई जहाज में सीट फीट सब्ब पूरी तैयारी थी—बीच ही में ” कुछ देर चुप्पी रही —“एक्सीडेंट हुआ था न ?” उसे अपनी ही आवाज अजीब भाँडे ढंग से बेसुरी लगी—‘हाँ इशोरेंस कम्पनी में था न। दिन रात बीदे करने पड़ते थे—इधर मुता कोई पुल बन रहा था—डाइमरसन था सड़क पर—उसने दूसरी सड़क ले ली, वही किसी बस या ट्रक से टक्कर हो गयी—ऐन सामने—बस उसी दम

राम-राम—’ वह सिहर गया। ‘फिर आपको खबर दी होगी—’

जेनी का ही फोन आया था—निष्प्राण आवाज टेलिफोन की तरह खबरें भर दे रही थी, बगैर उतार चढ़ाव के— कहने लगी आप आयोग क्या ? बचा तो नहीं कुछ भी—फिर हमने कहा क्या करेंगे जाके—पसा

भी तो चाहिए जाने आने को—”

“सो तो है ! ” उसने कहा ।

‘ वैसे तो रघु ने इस बार लिखा था कि अबके आके हमें भी कुछ दिन का साथ ही ले जायेगा वहा, पर उसकी बात, उसी के साथ गयी । अस्व क्या ! ” एक शांत शिथिलता से मोटे बेडौल हाथ घुटना पर टिक गये—  
‘ जब अपना लडका ही नहीं रहा तो अग्रेजा ने मुलक में बेगाना की तरह क्याऽ जाना—”

‘ पर जेनी ? बच्चे ? ”

जेनी का तो पीहर वही का ठेरा । उसके मां-बाप, सग संगाती तो सब वही के हुए—” आवाज कहती जा रही थी —“रह गये यहाँ हम जटायु जैसे पखहीन । किस आसरे ? किसलिए होता है ये सब ऐसा ? हैं ? कभी सोचती हूँ जब उसने जेनी के साथ दादी करने की लिखी तो मैंने ही कहा था इससे तो तू पहले ही मर जाता—पर मेरा ये मतलब थोड़ी ही था—अरे आशीर्वाद भी तो इसी चमड़े की जीभ से दिये थे उसे, वो क्या नहीं फले ! एक बीसना ही क्याकर फल गया ! क्या पूजा, क्या पाठ ! सब बेकार है—”

सर दीवार पर टंगी एक स्विच घड़ी से एक बेडौल कोयल का सिर निकला—कुक्कू कुक्कू कोयल ने ग्यारह बार कुहकुर ग्यारह बजाय—घड़ी समय से पीछे थी ।

“पिछली दफे आया तो ये घड़ी और जाने भया क्या लाया था—अरे ये घड़ी-बड़ी क्या मैं तेरी जगह रखूंगी ! बगलवाली कहती थी बड़ी महेंगी चीजें हैं—मैंन कही अरे हमारे लिए महेंगा क्या, सस्ता क्या !—अरे जवान बेटे का आँख के सामने होना क्या कम बड़ी चीज होती ! पर हर बार वो जेई कह कि अम्मा, ह्याँ जित्ती कुल तनखा पाऊँगा उससे चारगुनी तो मैं और जेनी बंबी सिट्टर को देते हैं हर माह । पालेंगी, अब वेई बेबी सिट्टरें पालेंगी रोजी और राजेस को । जेनी को तो नौकरी स ई फुरसत नई । जब तब नई छोडी नौकरी, तो अब क्या छोडेगी ? ”

“बच्चे आ चुके हैं कभी यहाँ ? ”

‘ यहाँ ? ” उह कुछ समय लगा प्रश्न को उत्तर से जोड़न में—‘ आये

ये दो साल पैले—राजेश तो बहुत ही हिल गया था—जाने को बतई राजी नहीं था—रघु बोला कि इमे रख लो, यही पढा दो—हम भी आसानी, तुम्हारा भी दिल लमा रहेगा, पर मैंनेई मना कर दिया—”

‘क्यों?’ सँभलने से पहले ही उसकी जिन्नासा छूट भागी थी।

‘जरे, बाहर के पले बच्चों को य जगह रास आती क्या? तुम्हीं कहो मा बाप सामने हा तो और ही बात है—पर वैसे कच्चा पानी वो ना पियें, मसाला वो ना खायें, मेरी भापा वो ना समझें-जानें। मान लो इधर महतारी बाप यहाँ छोड़के चले जाते और इधर य बीमार हो जाता तो? सब येई कहते कि दादी ने देखभाल नहीं की।” महिला के हाठ कुछ दर अपन से ही कुछ पुन्बुदाते रहे।

वह चुप रहा। अब चलना चाहिए उने। उसने गला खँगारा। “अच्छा अब चलो।”

‘जात है?’ महिला की निष्प्राण आवाज ने प्रश्न दोहराया। ‘ये आतेई हाग। तभी जीने पर से आवाज आयी। दरवाजा खुला।

‘कौन?’ दरवाजे के पीछे से एक बूढ़ सज्जन भीतर आये। हाथ में झाला लिय। पहले मुह बिगाड़कर उहाने दो-तीन डकार लिये, फिर मोला दरवाजे से टिकाकर मुडने की उद्यत हुए। वह उठकर सड़ा हो गया—  
‘नमस्कार।’

‘नमस्ते। बैठिये, आपका गुड नम?’ बूढ़ अपेक्षाकृत चुस्त और छरहरे बदन के थे—उनकी गोरी रंगत छोटी छोटी काइया आखी और बाचाल दीखते लम्बे पतले हाठा म राघव की स्पष्ट छबि थी। लम्बे अर्से से कामकानी दुनिया से कटकर घर की चारदीवारी म दोपहरें काटोवाले पुरपा की निगाहा, मुद्राओं जोर भाया म जो एक् खास स्त्रिमोचित कटाव आ जाता है, उसे उसने महसूस किया—

‘जी, मैं जनादन हूँ—राघव और मैं होस्टल म एक साथ ”

‘हाँ हा हाँ। आफकोस। बैठिये—अरे भाई चाय वाय कुछ—बैठिये न।” उनके बातून सहजे म लम्ब अर्से तन अकेले रहे आय रिटायड आदमी का उत्साह था जो कोई भी पुरूप थाता मिलने पर उससे बिपक बिपक जाना चाहता है। उसने अव्यवस्थित महसूस किया—महिला अपनी

घोमी घोमी रेंगती गति से भीतर घल दी थी। खाने पीने के स्मरण मात्र से उसे लगा जैसे उसे उबकाई आ जायगी—“जी, चाय बगैरा नहीं।” उसने बेकली से प्रतिवाद किया।

“अरे हम भी इसी बहाने दो चुस्की ले लेंगे जी। बैठिये—” बड़ आराम से सोफे पर पसर चुके द। वह संकुचित हो अपने को कोसता गया—यया नहीं पहले निक्ल भागा था? कुछ देर चुप्पी रही। उसी न बस-मसावर मोत तोड़ा—“मुझे राघव के बारे में पता नहीं था—आज ही यही आकर मालूम हुआ। मुझे तो पिछले महीने ही उसकी चिट्ठी मिली थी कि वे भव आनेवाले हैं—इसी बीच में ”

‘क्या कहा जाय।’ बड़ ने आँखें मूंदकर पपोट सहलाये और लम्ब सुन्द वातालाप की अपेक्षा में चश्मा गोद में डाल दिया—‘यहाँ तो हम सब क्या नाम, इतजारी में थे कि मय फैमिली के यहाँ आयेगा—रहेगा—इधर ये खबर आ गयी—मैन प्रपोजेज गाड डिस्पोजेज—” अशुद्ध उच्चारण से उहाने जाड़ा। फिर पुराने फैशन की किताबी अंग्रेजी में उसे बताने लगे कि राघव वहाँ कितना अधिक बर्मा रहा था और इस कम उम्र में ही कितनी सम्पत्ति जोड़ चुका था—जो मकान उसने बनाया था क्या नाम, उस बीस हजार डालर में तो आर्किटेक्ट से सैण्डस्केप ही कराया—नायाब पेड फर्नाचे और फूना के पौधे लगवाकर—क्या नाम, तीन तीन तो कारें ही थी—फिर जेनी के माँ-बाप भी कई चीजें दत रहते थे, कभी कार, कभी सोने चादी के तोहफे। वह भी अच्छी तनखाह पाती थी। ठाठ थे। एण्ड बैस्ट आफ आल,’ उहाने गदेली पर मुक्का मारा, ‘दिल से रघु तब भी एक सरल हिंदोस्तानी ही रहा आया। पिछली बार आया तो वाइफ से बोला—बस अम्मा मेरे लिए तो इण्डियन स्टाइल खाना ही बताओ। जेनी-बच्चा का बहुत होगा तो बाहर खिता लाऊंगा—कदरू पूरी कढ़ी, अनरसे। बस यही सब खाने भाते थे उसे—सैकड़ा जलेबी, बड़े और इडली डोसा के मिक्स के पैकेट साथ ले गया—बाय एयर (हवाई जहाज से),” उन्होंने कुछ खककर जोड़ा। फिर बताने लगे कि कैसे उनका दूसरा लड़का माधव भी लायक है—अभी इंजीनियर हुआ है—और वे तो उसमें कहते हैं कि गो बैस्ट यंगमैन। (नौजवान! पश्चिम जाओ।) ये लाइफ भी कोई



साफ है, क्या नाम, रोते सिसकते बतारा। म पिसटत हुए दिन बाटना। यहाँ दो हजार पावर भी अघपेट रहोगे— फिर बहून की नी तो शादी करनी है—

भदरग देढ़ा देगा पदा हटाकर हताग पास से सरपती-सी महिला हाथ में दो छलकत गिलास पकड़े घाय से आयी थी। काफी की एक प्रचलित प्रकार की सीनिया स बने बाँन के गिलास थे। उसने चुस्की ली। घाय में मानो इस पूरी दुपहरी का निचोड़ था—मुनकुना, भदरग और बस्बाद। भूरा पानी भर जिसमें दाखार बस छुला दी गयी थी।

“क्या डऽ! अरे ट्रे म सातो यो बाहरवाली—” फिर वे उम बताने लगे कि यह उम्दा ट्रे और भिक्सी, राघव पिछली बार बस लाया था—बस्टम को बचया देकर। पन्द्रह तो पड़ियाँ ही ले आया था। जानत हो कैसे? उहने पतलून उकसाकर अपने पतले रविदार टांगने धपधपाय— “यहाँ बाँधकर। उह बेच दाखार माघव की स्क्रूटर खरीदवा गया जाते दम—ऐसी जुगत-खूबी थी उसमें। अरे कुछ खाने-खाते को नहीं है क्या?” अपनी ही पुरुष जात को सहभागी पाकर बूढ़ की आवाज में फिर एक क्रूर हिकारत आ चली थी। या शायद रोज का ही डर्रा होगा। निर्विकार चेहरे से महिला फिर साकर एक तस्तरी रख गयी जिसमें चार छ वेडील बर्फी के टुकड़े पड़े थे। अचानक उसे लगा कि यदि गिलास उसने दोबारा हाठा से छुलाया भी तो उसे कँ आ जायेगी। वह बेकसा से उठ खड़ा हुआ— ‘जी, अब मैं चनू! दरअसल कही जाना भी है।’ बूढ़ कुछ अप्रतिभ हुए— ‘अरे पर चाय तो तुमने पी नहीं। अच्छा चलो, एक टुकड़ा मिठाई तो ले लो।’ उहोंने तस्तरी उठायी। उसने मिठाई का एक टुकड़ा उठा लिया और घडाघड सीढियाँ उतर आया—पीछे पीछे बूढ़ धीमे धीमे उतर रहे थे। उस अचानक शम उमड़ पड़ी—कैसी अभद्रता स वह उठ भागा, वह भी ऐसी मुलाकात के बाद— ‘भाफ करें, मैं हडबडी में उठ गया—दरअसल कहीं अपाडण्टमेण्ट है फिर ”

‘अरे ठीक है माई।’ बूढ़ ने उसके क घे धपधपाय— “इस शहर में काम-ही-काम है। तुम चले आये यही बहुत हुआ। हाँ एक काम अगर हमारा सको तो—” उ हाने कुछ रक्बर भेद भरे ढग स जाडा।

‘जी?’ अपनी कुछ देर पूव की अभद्रता को धा पाछने को वह दूनी

तत्परता ने मुड़ा ।

“पिछली बार रघु आया था तो एक हाउसिंग सोसायटी में कुछ रुपये डाल गया था अपने नाम एक प्लैट के लिए—हम सोच रहे थे कि जेनी से लिखवा लें कि वह प्लैट अब माधव के नाम ट्रांसफर कर दे । उसे वहाँ के प्लैट से क्या करना, रघु होता तो बात और थी—अब तो क्या ही आयेंगे वो लोग इधर—वहाँ तो उनका घर है ही—”

‘जी—’

‘तो जरा मालूम कर लेना कि क्या कारवाई करनी होगी उसके लिए । ये काम अभी ही हो जाये तो ठीक है । एक बार प्लैट बनने लगे तो फिर हजार उज्र उठ सके होंगे—वैसे जेनी के पास तो भारतीय नागरिकता है भी नहीं ।’

“जी, मैं पता करूँगा ।”

‘हाँ, वस तो दो तीन बीरो से भी कहा है—पर तुम भी जरा, क्या नाम,—’

“जी, अच्छा ।” बूढ़ के पीछे होते ही दूर कहीं नारी कण्ठ की तिल-खिलाहट गूजी ली खी खी । उसने पाया वह काँप रहा था । दद हुआ तो उसने मुट्ठी खोली । उसके दायें हाथ की मुट्ठी जाने कबसे बसकर बिन्बी हुई थी—उसने धीमे-से हाथ पसारा । बर्फी का एक बेआकार सादा उसके पैरो के पास मिट्टी पर गिरा—तदद । रूमाल निकालकर वह दर तक हथेली पाछता रहा, पर हैण्डल पर धरे हाथ की चिपचिपाहट गयी नहीं ।

## यानी कि एक बात थी

जो होते होते रह गयी। और वैसे देखा जाये तो अब वह बात पुरानी हुई भी। पर तभी मुझे मालूम हुआ कि सूखी जाती नदिमों की तलहटी की तरह हम लोग भी शायद नमी का कोई खतरा कभी बना रह जाता है, शायद उस घर का एक हल्का नम लहरिया जाभास, जो कभी इस जगह बहती थी। क्योंकि सब कहती हूँ कि जब पहले पहल पूरे पन्द्रह साल बाद मैं उस फिर दरवाजे से भीतर आते दखा, तो क्षण भर की चौदह सौ बोल्ट के करंट की तरह मेरे भीतर एक 'ऐसी घटकेदार भक्क' !' हो उठी कि मैं भी चाक गयी। कमाल है ! अपने साम के नीचे मैं अपनी टांगों को एका एक कुकुरमुत्ते की ढण्डिया की तरह एस हास्यास्पद रूप से हल्का और लुज हाता महसूस किया, मानो मैं कोई सत्रह बरस की खिलखिल छोकरी होऊँ। गनीमन यही थी कि मैं बैठी थी और इससे बात के जाहिर होने का कोई खतरा नहीं था।

शायद उसके भीतर भी ऐसा ही थुलथुलेदार कुछ घट रहा था, क्योंकि नौद न चलता हुआ सा वह सीधा दरवाजे से उस जगह पर आया, जहाँ मैं बैठी थी और मेरे पास घमककर कुछ दर चुपचाप मुझे ताकता रहा। अब हम दोनों चुपचाप अपने यकीन की तोल रह थे, जसा कि प्यार करने से पहले चिड़ियाँ करती हैं। धीरे धीरे एक-दूसरे के चारा ओर मँडराती हुई। जो हा रहा है उसे टोह पाने के लिए पुतलियाँ चौड़ाये हल्के-हल्के

नामालूम तरीके से चहचहाती हुई ।

बाहर सबक का कुतूहलहीन पीला नोलाहल ज्यादा बलफदार कालर की तरह निरंतर भ्रमिर रहा था । कभी कोई चिचियाकर लगाया श्रेव किसी सम्भाव्य हादसे की चोधभरी फाँव अँधेरे में डाल जाता था । वस । चिह चिह चिह

अतत उसी ने गला खँकारा, 'कैसी हो ?' उसका परिचित सुन्दर चेहरा उत्तेजना और सकीच से हल्का सुनहरा हो आया था । ताजे सिके टोस्ट की तरह जायकेदार और कुरकुरा । वह इन पद्वह साला के बाद भी तकरीबन वैसे ही रह गया था, जैसा कि हुआ करता था । अपन भरे भरे, क्षतिपय उत्तेजित लगते हाँठा और हड्डिडहा कुहिनियो समेत । बबकूफ-बेबकूफ और प्यारा प्यारा ।

"बैठो," मैंने साधिकार कुर्सी उसकी ओर खिसकायी । पहले पहुँचने के कारण उस नीम भ्रंशेरे पर ज्यादाह हक मेरा ही था । शायद, बावजूब इसके कि कुर्सी मेज न मेरे थे और न उसके । उनका असली मालिक कौन में बैठा, हर असली मालिक की तरह बेहद उकताया और उनीदा दीखता हुआ दात में फँसा कोई जर्ज जीभ से टटोलता बाहर ताक रहा था । फिर उसने एक अपचभरी डकार ली और उठकर उघर बल दिया, जिघर रसाईघर पड़ता था । वह मोटा था, और उसकी टांगें छोटी और पतली थी । पीछे से वह कुछ-कुछ गजा भी हो चला था ।

'बहुत असें से तुमसे ' उसने कहना शुरू किया । मुझे वीरान खण्डहरों की तरह रहस्यमय बनाती मेरी चुप्पी उसे भी औरों की ही तरह आतंकित करती है, 'बहुत असें से ' वह कह रहा था ।

'जानती हूँ ।' मैंने टोक दिया । वह चुप हो गया । शायद मुझे ऐसे नहीं टोकना चाहिए था । या शायद उसे ऐसे चुप नहीं होना चाहिए था । या शायद मुझे भी कुछ बोलना चाहिए था । शायद बहुत कुछ पेट पर हाथ फेरता मालिक तभी झूलने-घाले किवाड धकेलता प्रबट होता है, उसकी छाटी छोटी आखें परिचय और जिज्ञासा से बतई खाली हैं । हम दोनों मानो उसके लिए दो भिर्नाभनाती मक्खियाँ हो ।

अब मैं पाती हूँ कि मैं बोल रही हूँ। मेर भीतर लिखे उम वीरान सनाटे मे मरी अपनी आवाज घुघुआ के स्वर की सी मनहूसियत से गूज रही है 'कितने साल' या कुछ ऐसा ही, और वह मेरा चेहरा, मेरा जिस्म, वस आँखों में टोहे जा रहा है। बाल भाषा-गाल होठ गला सीना पट-पर-टखने मेरा सब कुछ वह जो पंद्रह साल के बवाहिक अनुभव से समझ और प्यार करने की दमना से पके आड़ू की तरह मदराया हुआ है। मेरे भीतर की गूज इतनी बढ़ गयी है कि मुझे अपनी बात ही नहीं सुनायी दे रही है। साफ है कि इस जिस्म के सुकून भरे परिचित फलाव के परे कैसा वह गूजना मनहूस बीहड़ उसकी नजरा से भी कतरई ओझल है जहाँ हर ओरत की तरह लाख लीचे, धबसे और खाटे जान के बाद भी मैं फिर फिर लौट जाती हूँ, अपने प्यार का बबच महामन्त्र की तरह जपती हुई। सूरज का नाभि की तरह एक भयावह आकषण भरा वह गूँथ बिंदु जहाँ उकड़ू बठी मैं मदरम ब बच्चे की तरह हिल हिलकर दिन रात रटती रहती हूँ—सब चलता है सब चलता है सब चलता है। पुरुषा की पगत से हरदम एक दजा नाच बैठने की तकलीफ पतली फाँस की तरह एक चील बनकर भीतर गड़ गयी है। न निकलती है न दिसती है। पर है। इस निकासो! इसे निकासो! मेरा पूरा भीतरी बियावान गूज रहा है पर मैं सिर्फ बुदबुदाती भर हूँ। पनीम साल का निरंतर अपमान, दाम के आतक से आतकित होना बसुबी मिगना है।

गो काफी सजीदा चेहरा बनाय अब मैं उससे उसके माता पिता, उसके महारमिया उसकी नीतरी और पीछ छूटे गहर की परिचित हस्तिया की पुनः पूछन लगती हूँ। वह भी बड़े ध्यान से मुझ-व मुझ मर हर मवान का जवाब दे रहा है। गो हम दोनों बगुबी जानते हैं कि यह सारी बात पौन उम अमली बात ग कतराना है जो पालतू कुत्ते के आगानारी गुलाबी पालन ग जुवान सन्ध्या बारी-बारी हम दोनों का मुँह जोड़ रही है। उमा जिम पुर्नो से मर गेल का आमन्त्रण स्वीकार ही नहीं किया बिना उमम बड़ चढ़कर पतरयाजी भी दिगाने लगा है वट वहाँ मुँह टूटाना करना जाना है। मैं चुप्पी में लौट गयी हूँ। बापस। ओर वही बात जा रहा है अन्धारा। एक बड़ा-ना बाता बिन्दु हम दाना के बीच में टगा है

जिसमे बचा-बचाकर वह तीर चलाता है और लिस्ट से मिलान कर अपना क्ल टोटल गिनता है। पर मूर्ख ! वह बिंदु फैलता जा रहा है। फैलता जा हुआ। वह उन सब परिधिया को ढक लेता है जिन पर वह अपना तरबस साधे था। और अब ? मैं खिलबिलाती हूँ, अब तू क्या करेगा प्यार ? बीछ ! वह अचानक चुप होकर मुझे देखने लगा है। बेवकूफ सदा का ! हाँ नहीं तो ! उसकी आँखा मे अपरिचय है या दुःख ? मुझे बेहोशी मे डूबत आदमी की तरह रग-गंध आकार कुछ नहीं दीखते। सिफ वह, सिफ वह।

ढाई रुपये ! " मस्ती सेलिहा बर्दोवाला बेटर हमारे सामन प्याले रखता हमारी नास एक-दूसरे स काटता है। मैं अपना बटुआ संभालती हूँ, वह अपना। यह मुस्तैदी से मुझे छेककर रुपये दे देता है, सलाम ले लेता है और फिर इमीनान स पसरवर ऊपर नीचे, दायें शायें दुबारा मेरा चालू भुआयना करत हुए कहता है "और सुनाओ।"

हमार मामने धीमे धीमे भपाते हुए दो प्याले हैं। दीवार के मास्टर ने शाक्ती एक गदरायी अभिनत्री ठुनककर अपना प्यासा बढाये कह रही है—सीजिए न ! मैं अचानक प्याले अपनी तरफ लिसकाकर दूध-चीनी वगैरह मिलाने की घोर घरेलू व्यस्तता मे सीग-भूछ छिपाये लगती हूँ। पत्नीम मात्र औरत की जिन्दगी काटन के बाद यह कसा मरी उसा मे नीले गोदन की बुदकियों की तरह गहर स खूब गयी है। इसके दो फायदे भी हैं। एक तो यह कि आप अपने कांपते हाथो का कांपना बखूबी ढाँक लेती हैं, दूसरे इस अदा की आत्मीय वामत्य भरी गंध, सगाय की सडाघ को तुरत दवाचकन मीठे की एक पृथुल नितम्बिनी दयालुता के हवाले कर देती है। दयालुता, जो हर वक्त मेर आगे पीछे मेंढराती है। गाय की सी फली फैली आँखावाली बड़ी बड़ी मातृत्वपूर्ण ढलकी छातिमावाली पैद की लाई सी लोचदार और नम दयालुता। बहुत कम बोलनेवाली, बहुत गम खानेवाली, मेरी वह अभिन परछाड जा गुम्म चोटो पर पुल्टिस रखती, घावा पर मर-हम लगाती मेरे द्वारा हर तोडे फेंके और चीथे भूँडे की किर्चों बिन्धियों को घर ने पिछवाडे फेंककर फिर हाथ बाँधे मेरी कुर्सी के पीछे आ खड़ी मुझे पपा झलने लगती है। वह मेरी हर चीख, हर बोसने, हर पिडकी के परे

है। इस सत्य नहीं देखते। हम आग नहीं जलाती। न हमें यह हमने पारीरे। मेरी साग जब पूरी तोर न ठण्डी हो चुकी होगी, मर सही का हर पतरा जब पयरा चुका होगा, तब भी यह यूँ ही चुपचाप अपन उबल अण्डे से भावहीन चेहरा को निय मेरे पायतान बैठी रहगी। आप नतिदगा तो सही। मेरी सोन। मेरी यह दयानुता, मेरी परछाई।

“आज दिन भर चीनी हो मिनाओगी?” यह पूछ रहा है। मेरी हँसी छूट जाती है। मेरी हँसा उग आसवस्त करनी है। हँसता चेहरा सब लोग को मुहाना है। देखो। हमो उन सतत प्रसन, सतत मुश्तगुजार मुहिमिना को जो पारिवारिक पत्रिकाओं के भद्र सनरगपन में पति और बच्चा का मौन इतजार करती हैं। एक मीठी मनुहार, एक चपटपट मनोबल में भल-पूरी सी सीसती हुई। मेरी नवनीयत सीत, मेरी यह दयालु चाबदारनी मेरी परछाई, तजनी टकी कर उनके उस विह्वल नयन में मुझे पतीत साला से शामिल होने को मोत रही है। जहाँ वे सब मिसकर मेरी जख्मर हड्डिया का सगायभरा क्रोध चूस डालेंगी और उनके पोसेपन में एक सहलहाता प्रश्नहीन अपार पारिवारिक प्यार ऐसे भर देंगी जैसे कि भरवाँ करले में मसाला भरा जाता है। ठसाठस।

“क्या बात है, दुबली लग रही हो, याम ज्यादा पढ़ जाता है क्या?”

मेरी हलाई छूटने छूटने को हो जाती है। वह अपने जिनासाहीन प्यार से मुझे कुरेद रहा है। धीरे धीरे। मेरे पोसेपन को उजागर करते हुए। वह मुझे भहराना चाहता है ताकि इट दर ईट मुझे फिर से सिरजन्म वह एक नयी बुलन्द इमारत खड़ी कर सके। वह इमारत जिसका नमूना उसकी बाँव में दबा है। वह याकई मेरे बारे में कुछ नहीं जानना चाहता, वह निक दरारें डालना जानता है। मेरे बारे में अपने पुसती क्षणा में बैठकर वे सब गडते हैं—अपने अपने साने, जिनमें मेरा दुबलापन है, मेरी तुनकमिजाजी और मेरी आकस्मिक हँसी है। इसी को वे सब अलग-अलग ढग से जोड़ते गुनते रहे हैं। पर यह जो मैं ठीक सामने बैठी हूँ अपन इस अनमापे भूरे बजर विस्तार के समेत अपनी चिपकू दयालुता की वेडोल परछाई से घिरी हुई, इससे उह उसे, कोई सरोकार नहीं। न तब या न अब है।

मैं भरी मुटठी पीठ के पीछे चुका लेती हूँ खाली हथेली सामने फैला

देती हूँ, "कुछ-न-कुछ तो चलता रहता है। घर-परिवार का काम है, कॉलेज के इम्तिहान—" मैं गलती से एक उसाँस ले लेती हूँ। अचानक मुझे लगता है कि इस उसाँस का मतलब वह कुछ और ही गुनेगा। गुनता भी है।—  
 बचारी। उसके चेहरे पर मेरी दयालुता की गऊ-आँखें कौड़ियों सी जड़ी हुई हैं, 'बहुत सहा है तुमने।' वह सिर हिलाता है दायें से बायें, भकुए सरीखा। उसे इस वक्त पक्का यकीन हो गया है कि मेरा अपन-आपको उससे काटकर अपना रास्ता अलग चुनने का निर्णय कतई गलत था। बेचारी। गुमराह, असह्य लडकी। अपने पुसती क्षणा में वह मेरी कितनी मसीहाई कर चुका होगा। मेरे दुःख से अपने आपका दोगुना चौगुना गुनते हुए। यह बात वह कभी नहीं समने पायेगा कि एक लम्बे भिन के जटिल प्रश्न की तरह जोड़ घटाना गुणा भाग की अनन्त प्रक्रियाओं से गुजरती हुई मैं जब तक उसके पास पहुँचती हूँ, कितनी सूदम, कितनी सरस और कितनी बुनियादी गूह जाती हूँ वह भुपमे से गुजरकर उन सब चक्करदार प्रक्रियाओं से मेरे साथ-साथ घटित होने के बजाय हर बार मेरी बुनियादी सरसता पर विमुग्ध मेरे चहुँओर चकराता रह जाता है, मेरे उस नदी के से क्षतधा रूप से कतई नावाकिए, जब एक विराट घिरी स छिलती पैमिल की तरह सन्नाते पतीला, भुन्नाते बड़ो और बढहवास बचवा के हजूम को भिगोती, अपनी छूँती बस पकडती मैं कॉलेज के हाते में ठीक टाइम पर पहुँच जाती हूँ। जिम वक्त पहली घण्टी बज ही रही होती है उस वक्त मौकें पर आ पहुँचने की खुशी मेरे ऊपर जो घनपना बरसा जाती है वही भर उसकी पकड में आता है, खीसेँ निपोरता मग वह फा फों तृप्त क्षणिक स्वरूप, जब मैं और मेरी परछाईँ अपनी तृप्ति भरी शुक्रगुजारी में वषायक एवाकार हो उठती हूँ।

अगर बार-बार जनता की भारी मांग पर हफ्तो रोक़ी गयी फिल्म की तरह इसी तप्ति में मैं न छेँकी जाऊँ तो शायद सोच सकूँगी कि इस मोटी सनहवाहवाली नौकरी और सदा सुहागिन गहस्थी के परे कोई तोसरा रास्ता भी खुलता है क्या? खुलता होगा। जरूर। एक घुकघुकी भरी शका, एक नीली अतृप्ति अलस्सुबह की ठण्डी घड़िया में आवाज़ बिल्ली की तरह कूद-कर मेरी छाती पर आ बैठती है। मेरे भीतर दो विराट भूर डने फडफडाते



हैं। एक तीखी नोसदार चोच पर मेरा प्रश्न छटपटाते चूहे की तरह टंगा है।  
कोन ? कोन ? वहाँ ?

पर अब तब मैं कुछ सोचू सोचू, दयालुता सपवकर मेरे हाथ स माचिस  
लेकर गैस जला दती है, पानी चढाकर बिस्तरे तहा दती है, और दिन फिर  
से गुरू हो जाना है। एक विराट पारिवारिक हडबडी मे सारी नोकें ढाँपना  
हुआ। मेरी सौत ! मेरी दयालु परछाईं फिर वही खडी है।

“कही बाहर चले तो ?” मेरे वाक्य स वह कुछ चौंकता सा है। पर  
फिर तत्परता स खडा हो जाता है।

‘हाँ हाँ, चलो !’

शायद उसकी तत्परता मुझे सुहानी चाहिए थी, पर अब गैरखली  
लगती है अब एक काला सशय धुएँ का तरह स हर चीज को भयावना और  
बेखोफ बनाता चलता है। यहाँ तक कि मेरी विद्राहभरी आक्रामकता भी  
वही उसके बनाये मेरे बज्रुद से मेल खाती है। लगता है कि मैं बस एक रोल  
बलूची अदा कर रही हूँ जो उसन मेरे लिए लिखा है, जिसम मेरी तकसीफ  
उसे नहीं दीवती, उसे अपनी कारगुजारी दीखती है जभी वह इतना खुश  
है। खुश होकर वह मुझ पर बेतरह दयालु हो गया है। उसका हाथ मेरी  
पीठ पर पित्तवभरा स्पश बनाता है, फिर हम बाहर हैं।

‘इस गहर को तो तुम ही ज्यादा अच्छी तरह जानती हो। कोई पाक है  
पास मे ?’ वह पूछता है। गैरखली होते हुए भी इस वकन उसके जहन  
मे गुलमोहर अमलतास का ठण्डा छाँवभरा, पुरसुकून कोई एकांत है जहाँ  
मेरे बच्चो की तरह छोटे और नम हाथ थमाकर वह मुझे अपनी शर्तों पर  
खेल खिलायेगा। कभी हरा देगा कभी जितायेगा। हर हाल मे अपनी ताकत  
मे सराबोर। चित भी उसकी, पट भी उसकी और अण्डा उसके बाप के बाप  
के बाप का।

‘चलो’ मैं अब उसे पास के एक पाक की तरफ ले जा रही हूँ यह  
भली तरह जानते हुए कि उम चिलक भरे विस्तार म न कोई ठण्डा छाँव है,  
और न ही लहसह क्यारियाँ। वहाँ बग ठप ठप हिलती एकाध बेंचें हैं और

उही म से एक पर उने बिठाकर मेरे भीतर की सतत भीरु दयालुता गोल-मोल चक्करो मे दौड़ती मूक प्रतिवाद म छटपटाती है। वह मुझसे डरती है। वह डर स मरती है। चल भाग।

हम दोनो हिलती हुई बेंच पर बैठ जाते है। वह चारा तरफ एक उड़ती-सी नजर डालता है, पर कुछ कहता नहीं। अमलतास ? गुलमोहर ? मैं हंसने को होती हूँ पर वह फिर मुझ तक लौट आया है। टकाटक। मेरे टुन्चेपन को उसने एम औदाय से वस्त्र दिया है कि मैं एकदम बौनी हो गयी हूँ। अपनी परछाई से भी छोटी। और इस वक्त वह बेसास्ता मुझसे प्यार कर रहा है। मेरे सारे जिद्दी बज्रूद को अपने बज्रूद से टटोलते, मेरे घावो, मेरी दुखती घोटो को अपने प्यार की असहाय ताकत से पूरने को, मेरे भीतर-बाहर, ऊपर नीचे, घूमते मेंडराते, ऐसे कि मैं थककर अतंत पूरी-की पूरी सो जाऊँ और वह मुझे उठाकर एक सुरक्षित किले म ले जाय जिसके बाहर घूमते दैत्यो के आतनाद से डरकर मैं उससे लिपट पड़ूँगी और तब वह कहेगा कि आओ, और मैं कहूँगी कि आती हूँ, और सरने की तरह उफनाती हुई मैं आऊँगी और उसे सराबोर कर दूँगी। नहीं।

“मैं चलती हूँ अब।” अपने सुर की रुवाई मे मैं शर्मिन्दा होती हूँ। अनसीसे चमराँधे की तरह एक सस्तपना मेरे भीतर चरमराता है। मैं जानती हूँ कि वह मुझे वाकई सराबोर करने की हृद तक प्यार कर सकता है, इस वक्त। अभी। पर इसके बाद जब मैं अपनी आँखा मे उस अपनी ही पीठ थपथपाता पाऊँगी तो मुझसे सहन नहीं होगा। क्षण की क्षणिक सुंदरता का भरपूर मजा लूटकर एक दयालु अनन्तता म वह मुझे सदा की तरह कील जायेगा, पर अब मैं उतनी भोली नहीं जितनी पंद्रह वरस पहले थी। न ही इतनी भली। इस नेकनीयत अनंत को लेकर मुझे क्या करना जो मुझे जरी का हार बनाकर मेरी ही मूरत पर चढा जाये ? पर अगर मैं उससे कहूँ कि मैं इस क्षण को उसकी सारी क्षणिकता और भगुरपने के साथ उसके साथ बाँटना चाहूँगी तो उसे बर्दाश्त नहीं होगा। है कि नहीं ?

‘क्या हो गया अब?’ वह लाडभरे पुरमजाव सुर मे पूछता है, “तुम्हारी चुन रुमिजाबी गयी नहीं, देखता हूँ।” उसकी प्यारभरी भूरी आँखो मे कण्ठा का डट्टह समंदर है, उस वारण के लिए जिसका सिरजनहार वह खुद है।

वह इसे मानेगा क्या ? एक लम्बी चौड़ी रेशमी दुलाई की तरह उसका प्यार मैं जब चाहूँ मुझे पूरा-का पूरा ढाँप सकता है, वैसे ही जैसे कि किसी भी लुच्चे का फिकरा मुझे पूरे-का पूरा उघाड़ सकता है। पर मैं न तो ढाँपी जाना चाहती हूँ, न उघाड़ी जाना। मैं अपनी उम्र बढौल सतत धँसवान, सतत क्षैतिज परछाईं समेत सीधी सतरगरदन उठाम सढक के इस पारस उस पार तक जाना चाहती हूँ। तब ? तब मैं यहाँ बर क्या रही हूँ ? अपन की हरी घास के मैदान की तरह उसकी करुणा की टापो-तले खूद जाने का बिठाती हुई ?

“अच्छा चलू, फिर अँधेरा हो जायेगा। तुमसे मिलकर वाकई—”

बात अचूरी ही रह जाती है। अपने असहाय प्रेम में सराबोर वह अभी तक ताके जा रहा है, और इस वक्त भी वह उतना ही सुन्नर और स्पृहणीय है जितना कि पहले था। और इस क्षण भी अगर मैं एकदम से रुक बदलकर कहूँ कि ‘रुकी’ तो वह सुरत रुक जायेगा, इस इतजार में कि मैं कहूँगी ‘रेडो, गो !’ और हम एक नयी पारी शुरू कर सकेंगे। पर इतनी तप-रत मैं उससे कभी नहीं कर सकती कि उसी का खेल फिर से चालू कर दूँ। और न ही इतना भरोसा रह गया है मुझमें कि इस सूर्य पाक के बजर विस्तार के बीच रबी हिलती डुलती इस हरी बेंच पर बिठारर उसे पूछू कि मरे इन सरेआम अपमाना, इस अकारण भय और शर्मिंदगी का जबाब मुझे कहाँ मिलेगा ? हालांकि सिर्फ उसने मुझे यह नहीं दिया, पर क्या नहीं अपने रेशमी प्यार के सारे हृद्रजाल समेत वह मुझे बगैर पालतू बनाये इनते उबार सकता ?

‘अकेली कैसे जाओगी ?’ वह पूछ रहा है। उसकी चिन्तातुरता में भी उसकी ताकत का भरपूर अहसास है।

“जैसे रोज़ जाती हूँ,” इस क्षण मैं भी एक छोटा-सा ओछापन दिखाने से बाज नहीं आती। शम। शम। मुँचुप ! “उधर से ॥ सो दो मिल जाती है, घर के ऐन पास छोड़ देगी।”

“अच्छा फिर—”

हाथ हिलाता वह छिप गया है। दिन भी ढल चला है और एक खास तरह का शहरी अँधेरा दाढ़ी की सूट की तरह सड़को पर ढग आया है,

स्याह । शका । दुविधा । फिक्र । अभी मैं उसे आता महसूस करती हूँ, नीली पतलून और कुछ-कुछ तेलोंस कालरवासा साँवला चूहे-सा आदमी, कनखियो से अवेलेपन का जायजा लेता, साँप-सा सरपट सरकता, आड़े-टेंडे वह मेरे साथ सड़क का अंतिम अवेला कोना पार करने लगता है । शका । भय । शका । वह एकदम पास आ गया है, इतने पास कि भिचे दाँतो के पीछे मैं उसकी हिंस फुसफुसाहट साफ सुन सकती हूँ "कुतिया ! ले जायेगी ? ले जा ! ले जा ! " उसका भद्दा इशारा उस भरपयी आवाज की कायर प्रतिहिंसा मुझे ऐन बीराह पर सनीमा के पोस्टर की तरह गँठ देते है । और इस अपमान से निष्कृति किंघर है ? एक तो वह खोह है प्यार की, जिसमे अपने को पूरा-का-पूरा मैं अभी उल्टे पैरों जाकर ऐसा गुडूप कर सकती हूँ कि चाँद और सूरज भी मेरी परछाईं नहीं छू सकेंगे, या फिर यह कर सकती हूँ कि निरन्तर अपना आचल खींच रही अपनी दयालु परछाई के अक्षुण्ण हरियाले विस्तार मे दूब की तरह ऐसी बिसा जाऊँ कि मुझे खोजना भूसे भ मुई बूढ़ने के बराबर हो जाये ! क्यों ? क्या इरादा है ? मैं अपने-आपसे पूछती हूँ ।

सामने बस स्टॉप दीख रहा है जहाँ एक पसीजती कतार बस के इन्तजार मे ऊँघती खड़ी है । मेरे जीवन के इस क्षण की प्रकाण्डता का उह तनिक भी भान नहीं । उन्हें कोई सरोकार हो भी क्यों ? आखिर मैं चाहे इधर जाऊँ, चाह उधर, और चाहे अपने निजी भाड मे, इससे न तो उनकी बस ही जल्दी आयगी, और न ही देरी से जायेगी । है कि नहीं ? रही जवाब की बात—  
 यानी कि एक बात थी

## विज्जो

फैशन के लिहाज से यह यूढ़ो का वप था। खूब बसकर, तकरीबन माथे के ऊपर ही मरोडकर बांधे गये जूडे, नोच नोचकर बेहद पतली बना ली गयी बेचारी भौंहा, और सुनहरी कमानी के गोल चश्मो का वप। कपड़े भी बीहड़ हो चले थे। बेमेल हथकरघे की साडिया और छोटदार ढीले ब्लाउज चादी के नाले पड़े हुए मैले थाभूषण या शम्भानुमा कुर्ते और तग मोहरी के पजामे। आँखो मे सुरमा फिर फशन मे जा गया था, या फिर काजल। पिछले सालो के नीले बगनी लिपस्टिक और पपोटो के ऊपर लगाये जानेवाली सुनहरी घानी ढाँडो नकली पलकौ समेत न जाने कब अपने आप गायब हो गय थे। यह फैशन का क्षेत्र भी एक बड़ा रहस्यमय इलाका है जनाब। यहा बिना हल्ले, बिना हडबाग के अचानक रातो रात सब बदल जाता है। ऐसे, कि पहले-पहल तो आपको यकीन ही न हो, कि यह भी भला कोई फशन है क्या? पर धीरे धीरे लगने लगता है कि भई बाह असल फशन ता यही है बाकी हम सब तो क्या नाम मल मार रहे थे! है कि नहीं?

तो उस छोटे-से निंदियाये शहर मे भी जहाँ हर चीज साल दर साल समुद्रतल की काई की तरह धीमे धीमे लहराकर तिरती भूमनी ऊँघती रहती थी ऊँचा फगन जा घँसा। एकाएक, यानी जिस अग्रेजी पत्रिकाओ की भाषा मे कहते हैं 'हाई फैशन'।

पहले दो-तीन ट्रको न अम्बार लगा हुआ सामान आया, फिर गमले

आये, फूलों और विचित्र रंगोंवाले पत्तों से चकाचक, फिर कुत्ता, फिर बाका तुआ फिर वे दोनों, और सबसे अन्त में बिम्बो ! पति ऊँचे, लम्बे वदन का हँसमुख दोस्तवाश इनसान लगता था । कीमती गम कपड़े का ढीला कुर्ता वह एक सामंती सापरवाही से धारण किये हुए । हा, हाँ, वे लाग कपड़े पहनते नहीं थे, वैसे जैसे कि बाबुआ, व्यापारिया के चुस्तकाट लडके-लडकियाँ पहने रहते हैं अपने वदन के बेडौलपने और अपने सत्कारों के भावरेपन को और ज्यादा उभारते हुए । वे लोग अपने वस्त्र धारण करते थे, जैसे कि पारम्परिक प्रस्तर मूर्तियाँ मंदिरों में करती हैं । पति के गले में उत्तरीय नर नहीं था, पर तब भी कल्पना की जा सकती थी कि वह किस प्रकार उसकी तहरी को बायें हाथ पर भेले हुए विराट हस्तमुद्राओं से एक कलात्मक पौरषमय अन्तरिक्ष रचता यदि वैसे परिप्रेक्ष्य में उसकी कल्पना करो तो !

पत्नी मुन्हने से जिस्म की सुन्दर लडकी थी । लडकी रहता ही पड़ेगा, बावजूद उसके बसे जूटे, नुची भवों और सुनहरी बमानी के गोल चदम के । उसका जबड़ा कुछ-कुछ चौकोर था, और एक ऐसी खानदानी जिद से भरा हुआ भी, जो पीढ़ियों से अपना हुक्म याअदब बजवाती रही हो । वैसे उसकी आवाज बहुत नरम और हलीम थी, और उसका उच्चारण गुनगुनी अंग्रेजी ध्वनियों से पगा हुआ था । आ' की मात्रा को वह हल्के में घुमाकर बोलती थी, और 'र' को एक बेहद प्यारेपन से 'ड' और 'र' के बीच का हल्फ बनाकर कहती । एक हल्का पंजाबी कटाव उसकी अंग्रेजी के सारे परदेसीपने को पाडकर उसे एक प्यारी प्यारी सम्भ्रांत आचलितता के घेरे में ले जाता था । वह कुछ कुछ रुककर झटके से बोलती थी, जैसे कि सामगान किया जा रहा होगा । उसके नहें नहें गुडिया हाथ, उस वक्त एक कमनीय अन्तरिक्ष रचते होते, हालाँकि उसकी अँगुलियाँ लम्बी, कलात्मक नहीं, बल्कि छोटी, चौकोर, पुष्ट और दुनियादार थी ।

बिम्बो की बात और थी । वह उस नही गुडिया पत्नी की निजी नौकरानी के बतौर आयी था लायी गयी थी । और उसके नाम के अनुरूप ही उसका जिस्म और उसकी पूरी सत्सियत एक निहायत सुखद व भासल जिस्म से

एक पजाबी, बतई भौतिक चाक्षुष उपस्थिति थी। वह अपनी मालकिन की विगत फैशनवर्षों की वे उतरनें पहने रहती थी, जो लगभग कोरी ही होती, पर उनमें उसके अपने खास निजी स्पश थे। सब कुर्तों के गले उसने नीचे तक काट डाले थे और उसका विराट वक्ष उसके बीच सुगन्धित जेली की तरह निरंतर काँपता रहता था। उसकी कमर चौड़ी, पर मुडौल, बूल्हे भर और तनिक उठे हुए थे। उसकी आँखें बीरान और चेहरा भावहीन होने के बावजूद उसकी चाल जवानों के खूमार से बोझिल और लडखडाती हुई थी—ऐसी कि हर किसी को लगता था कि उसके सहारा दिये बगैर वह चल नहीं पायेगी। झूँक घर के सारे बाथरूम समरमरी फश क धे, चुनाँच वह कपड़े बाहर लान के नल पर घोती थी। दुपट्टा घाड़ी में टाग अपनी शलघार टखना तक चढाये, आस्तीन समेटे वह जब क्षपाक क्षपाक की ध्वनि से भूगरी चलाती तब मुहल्ले के सारे नौकर घर के पतीले गैस पर जलते छोड़कर निकल आते थे। वह न उमरे से किसी से बोलती, न चालती। एक मस्तानी अदा से अंतिम कपड़े को पछोर, फीच और झटकारकर वह प्लास्टिक की बाल्टी में डालती और हाथ बढाकर दुपट्टा उठा खरामा-खरामा घर के भीतर दाखिल हो जाती। मुहल्ले की फुमशी दोपहर देर तक उसके निगम्बों से सटी पेण्डुलम सी डोलायमान होती रहती। हर रोज।

हर रोज ठीक ग्यारह बजे पति अपनी गाड़ी में काम पर रवाना होता और पत्नी उसे दरवाजे तक छोड़ने आती। वे अग्रेजों की तरह चुम्मी लेकर 'अलविदा' कहते थे और फिर पत्नी अपनी अटकती सी जुवान में बिम्बों को पुकारती आदेश देती, भीतर चली जाती—बड़ा बँधा-बँधाया दैनिक दस्तूर था। ठीक साढ़े ग्यारह बजे एक सुन्दर प्लास्टिक का झोला टांगे बिम्बों दरवाजे पर नमूदार होती और अपनी लडखडाती मदमस्त चाल में बाजार की जोर निकल जाती। नुक्कड़ पर कपड़ों पर प्रेस करता रामनरेश घोबी अपने विविध भारती कार्यक्रम का वाल्यूम ज्या ही बढाता, तो पता चल जाता कि वह ढाल पर उतर रही है। फिर 'चौरसिया पान भण्डार' के ठहाके अचानक ऊँचे हो जाते, पाकेटा से कधिया निकल आती फुगें सँवरने लगते—यराज्जा !

धीरे धीरे उन लोग के मित्र भी बनने लगें थे। यह शहर का सम्भ्राततम

पुराना इलाका था और यहाँ के सब बाशिन्दे बड़े बापा की औलादे और बड़े दादाओ, पर-दादाओ के पोते पोतियाँ थे, नौकरी करना जिनके लिए एक शुगल था। उनके पास इतना था कि बताना गरलाजिमी हो चुका था। इन बगलो की अपनी दुनिया थी, अपने जश्नो—सैर-सपाटे और अपने खफीफ़ से मज़ाक या बदगुमानियाँ थी। नयी या चकाचौंध करनेवाली चीज़ा से उन्हें सख्त परहेज था। इन बगलो के आरामगाही में पुरानी धूसर मूर्तियाँ, नायाब ओवेड के पुराने सोफे, शिपेनडेल का प्राचीन फर्नीचर और अलकरण एक समझदार उक्ताहट से बिखरे रहते। उनके फ्रिज रसोईघरो में थे और बड़े नामीदामी स्टीरियो यूनिट भीतर की किसी कुठरिया में। वे सब धीमे बोलते, धीमे चलते और धीमे धीमे खाते थे। उनका सब कुछ एक अलस अनौत्सुक्य में भीगा भीगा और एक बालसुलभ विश्वास में मड़ा हुआ था। ऐसा बालसुलभ विश्वास, जो सिर्फ़ उही लोगो में होता है जिनका बचपन सतरगी परीकषाओ की झग में से सीधा निकला हो—दूधिया, कच्चा, पुरतासीर।

पत्नी अपनी भोली भाती आवाज़ में मित्रो को प्रायः बताती थी कि बिम्बो घर के क्षेत्र में उनका एक प्रजातांत्रिक प्रयोग थी। अगर आप इनसानो की तरह उनसे पेश आयें तो कोई कारण नहीं कि नौकर हमदद मनुष्यो की तरह आपके घर में काम न करें, उनकी भी 'वाइक्स' हैं, उनकी भी 'एम्बियांसेज' हैं, नहीं?

बिम्बो वही खाती थी जो वे खाते थे—यानी मक्खन, अण्डा, फल, दूध, पनीर सब। वह हर महीने अच्छे कपड़ो से लैस करायी जाती, उसे हर पक्ष-घारे अच्छा साबुन, शैम्पू और टैलकम पाउडर लेकर दिया जाता। "उनसे वह जो करे उसका अपना सिरदद है, हम उससे एक इनसानी धरातल पर पेश आना चाहते हैं, मालिक-नौकर के स्तर पर नहीं, बराबरी के स्तर पर।" फिर मालकिन अपनी मूढ़ आवाज़ और भी मूढ़ल सगीतमय बनाकर कहती, "बिम्बो—दो निम्बू पानी और प्लीज़।" बिम्बो रानी एक सक्सी रोबोट की तरह हिसती-डुलती निबिबार चेहरा लिये कुछ देर बाद नम्रदार होती,



हाथ में एक साली चाँदी की पुर्तनी टूट हिमाती हुई, 'निम्नक बान्ता के, धोनी वाला ।' उसका स्वर उसके चेहरे की तरह नाबहीन होने पर था, उसने जिस की तरह कुछ फटा-फटा पराक हगग्य दृष्टिकोण में आकषक था । पत्नी तुरन्त विनम्रविगलित हो महमानों में हल्ला मीटकर पूछनी कि व नमकवाना लेग था चीनीवाला । यह तो नमक सेनी है पर जेना व चाहें । फिर आदर द दिया जाता, और हिसती-होसनी बिम्बो पदों पर गूमी बाग की पुरानी पण्डियाँ पकारकर भीतर चली जाती ।

तभी पति-पत्नी ने लार्गेका यह भी बताया था कि उन्होंने पिछले शहर में बिम्बो को एक झूटीगियन से ट्रेनिंग भी दिलवायी थी, ताकि वले एक और हुनर आ जाय । पढ़ने या टाटपिंग सीखने में उसकी रुचि नहीं थी सी, "अब वह एसा 'फेगियस' दती है कि स्वभा का पोर-पोर जाग उठे । मेरे बाहों के बालों की प्रेडिंग भी वही करती है," पत्नी अपनी रोमहीन मुडौल गोरी मुँजा फैलाती ।

क्या सिर्फ स्त्रियो को ही देती है फेगियस ?

"नहीं, नहीं ।

'क्या मुंदरता औरता का हो हक है ?"

"आप चाहें तो—

हा-हा-हा—मजाक छिड़ गये—पहले तुम पहले तुम । फिर एक जना मजाकों से बिधा आघा मगन आपा छगन होना बिम्बो के साप भीतर की कूठरिया में चला गया और आघे-पीन घण्टे बाद चमकता चेहरा लिये नमूदार हुआ, 'मानना पडेगा है तुम्हारी मुटल्ली के हृय में जादू ।'

'यही तो मुझे भी अचरज होता है' पत्नी चहकी, 'पर के बाम में तो ऐसी वेगाजर है कि यदि कुछ न होता तो हमे शायद समय से खाना भी नहीं मिलता इतने ग्लास और प्याले तोड़ती है कि भगवान बचाये, पर इस बाम में हुनर हासिल है ।'

'अपन-अपन हुनर हैं—हा हा हा हा ।' फिर अचानक उनके घर लोग की आवत-जावत बढ़ने लगी । इस मोहत्से के पुरष यू भी नौ से पाच दफ्तर जानेवालों में नहीं थे । दफ्तर तो उनके अपने थे ही । जिन बिल्डिंग में दफ्तर थे, वे बिल्डिंगें भी उनकी ही थी । अब अक्सर पति सच-टाइम पर

आता तो पत्नी मुनाती रहती, “लच अधूरा बना पड़ा है और बिब्बो फिर किसी को ‘फेशियल’ दे रही है पन्नेस का मामला था—अपने आज्ञादल वालो और वक्तव्यो से भरे दूतने जमावडा के बाद गली कूचे की औरतो की तरह टोकाटाकी कग्ना भी उनके लिए सम्भव न था। भलमसी की मार। वे लोग बड़े पशोपेश मे थे। न्धर बिब्बो की भूस का मानो इन्तही न था। सुबह वह छह टोस्ट और दो तले अण्डे डवार जाती—साथ म एक गिलास दूध। जबकि देह की तराश को लेकर मजग पति पत्नी कुडत हुए सिफ काली कॉफी और टोस्ट भर लेते और जब वह आकर लचककर वहनी, “जी, बस का सालन पडा है, मैं ले रही हूँ टोस्ट के नाल अच्छा?” तो वे बगलें झाँकने लगते। दूध भी वह दिन भर पीती रहती।

पत्नी को लगने लगा था कि वह फ्रिज मे ताता लगा दे, तो ठीक रहे। गुच्छा-भर पुष्ट बेला चाँदी के ‘मून्बोल’ मे सुबह रखा होता, शाम तक एक काला-सा सुकडा बेला उसम पडा रह जाता। अचार की प्रीशिया की प्रीशियाँ साफ हो जाती। जैम के भी बही हाल। पत्नी के मायके से मव के पैल आते, उनका माल भी दबत-दबते जाघा रह जाता। फिर खरबूजे को दबकर खरबूजा रंग पकडना है ही। बिब्बो की देखा देखी खानसामा की भूख भी चमक उठी थी। जितनी दर पत्नी कूठरिया मे शास्त्रीय संगीत के ‘स्टीरियो रेकार्ड’ लगाकर पड़ी पड़ी अग्रेजी गितावें पढनी, उनके विदेश मे आयातित ट्राजिस्टर म तेज फिल्मी गाने लगाकर वे दोना रमोई मे ठिल-ठिलाते रहत। “आदिम भावनाएँ हैं, लव, हा, हा, हा।” पति न मित्रा के बीच पत्नी को फिर समझाया, “वे लोग अपने को नहीं रोम सकते। कुत्ता बिल्लिया की तरह उन्हें मजा करने दो, शाम को खाना और उम्दा मिलेगा—हा हा हा।”

“उम्दा तो क्या, चार गिलास और दोनो तोड डालेंगे” पत्नी न समक कर बहा। उसका धैर्य कोनो से फटने लगा था, “उसे मालूम है कि सुबह ठीक आठ बजे मुझे पलग मे कॉफी चाहिए। उसके बिना मेरा जहन काम नहीं करता। आज भी बजे तक नहीं आयी। देवने गयी तो खानसामा कहता है—वह अभी सो रही है। खानसामा, आफ आल द पीपुल। मुन्धन। वह भी उसका लेकर।”

“तो तुमने क्या किया ?” यह शायद उस दिलजली ने पूछा, जिसका पति उस वकन बिम्बो से मालिश करवा रहा था। “मैंने वही खड़े-खड़े लताड़ा उमे कि ऐसे बात करते हैं क्या ? तभी देखती हूँ कि मल्फाजी आखें मलती आ रही हैं— क्या बजा है बीजी ?” आय टैल यू—मैं तो गुस्ते के मारे उल्ट पाँव लौट आयी।”

‘मेरी मानो तो इसे चलता करो।’ किसी ने सलाह दी।

‘वही सोचती हूँ पर आजकल फिर नौकर मिलते कहा हैं। उनके बिना भी तो—”

“यह तो है।”

गर्मिया बीती, जाड़े आये पर बिम्बो के मारक जिस्म ने शॉर्ले नहीं ओढ़ी। हालांकि उसकी मालकिन छह हजार रुपये का पुराना पर्सीना ओढ़े हीटर के पास बैठी ‘हू हू’ करती रहती। मक्खन, मेवे घी की सुनाई स चिकना अपना उबले अण्डे-सा भावहीन चेहरा लिये बिम्बो उसके गुडिया हाथो-पैरो चेहरे की उबटना से मालिश करती कील मुहासे निकालती ‘मैं सँवारती और टांगो पैरो को रोमहीन बनाती रही। जाड़े-गर्मी-बरसात किसी मौसम का उस पर कोई असर नहीं था। उसका खमदार बदन वैसा ही मस्त रहा आया और रंगीन पटियालवी फूदने से सजी उसकी लम्बी गुत्त उसके बिराट कूल्हों पर डोलती एक बड़े समुदाय का तन मन डोलाती रही।

‘आजकल मैं कोशिश कर रही हूँ कि वह कुछ बुनाई-बढ़ाई रीस जाय, पढ़ाई लिखाई न सही।’ अपनी रीयमैस सिगरेट का कश लेकर पत्नी ने कहा। वह एक ढीला बड़ा हुआ पम्पा पहने हुए थी जो उसकी किसी पूवजा के किसी तायब कश्मीरी साल को काटकर सिला गया था।

सिलायेगा कौन ?” किसी ने जिगासा ध्क्क की। उन लोगो को इस तरह की चीजें आती ही कहाँ थी ? काढ़ना बुनना, पवाना—पर जरूरत थी भी नहीं। उनके लिए ही तो यह काम बिये जाते थे, सारी दुनिया में। अगर वे लोग भी अपने कपड़े खुद सीने काढ़ने लगते तो उन भव्य सिलाई की दुकानो का क्या होगा ? पत्नी ने उसी बिरम की एक दुकान का नाम लिया, जहाँ शाम को मध्यवित्त मृष्टिणियो और उनकी विवाहयोग्या

लड़कियों के लिए सिलाई कटार्ड की क्लास होती थी। झाड़वर शाम को अपने घर जाता हुआ उसे छोड़ आया और चापसी में वह बस ले लेगी। बस इतनी ही-सी तो बात थी। पति पत्नी अपने औदाय और अपनी स्कीम के चौकसपने पर बड़े खुश थे। “उसकी ‘साइकी’ (अंतरात्मा) को कुछ तो रचनात्मक सतोष मिलना चाहिए,” पत्नी ने अपना गुडिमा हाथ लहराकर कहा, “वर्ना ओसत हिन्दोस्तानी लिबिडा (अस्मिता) छटे शहर में ऐसी कुचली रहती है कि सिवा सक्म के दिमाग में कुछ आता नहीं।” फिर कुछ देर के सब बेहद सुधरी और विद्वत्तापूर्ण अंग्रेजी में आम भारतीय और सीक्स पर खुली बातचीत करते रहे। वे लोखुली बातचीत और खुली बहसों के आदी थे, इतने कि वे कल्पना भी नहीं कर सकते थे कि वे बिब्बो का उस दब्यूपने और सकीणता में बांधकर रखेंगे, जिसमें आम भारतीय औरत खासकर नौकरानी को रहना पड़ता है।

पर इस सब सौहार्दपूर्ण खुली बातचीत के बाद जब बिब्बो का इसकी सूचना दी गयी तो उसने अपने नितांत भावहीन तरीके से साफ मना कर दिया, “नहीं जी, क्या करना।”

“पर तब तुम कपड़े सिल सकोगी?” उन्होंने सुपाया।

“बढ़ोत है जी फिर दर्जो ता है ही—”

‘पर मे हमारा थोड़ा मरम्मत रफू का काम कर लेना।’

“सो आप दर्जो से करा लो बहतर करेगा।” इतना कहकर वह कुछ हँसी थी।

“तुम्हें मशीन से दूँगे—बीन मी है डालिंग, वो हिन्दोस्तानीवासी जो मिक्स ईष्ट को भी एक्सपोट होती है?”

“हाँ हाँ, निगा वाली, फिर तू कपड़े सीना मजे में।”

“क्या करना जी,” बिब्बो ने बातचीत को पक्का पूरा विराम दते हुए कहा और नल के नीचे सलाद घोने लगी। उनकी पूरी योजना गड़बड़ गयी थी।

“पर तू दिन भर सो खाली रहती है फिर क्या करेगी?”

“सोऊँगी जी” उसने उसी ऐतिहासिक भोलेपन से कहा जैसा कभी मूरजहाँ ने बहतर उछाये थे, और खानसाभा को देखकर हँस पड़ी।

बिब्वो एक सरदद होती जा रही थी। वह दर-दर तक सोती, ढेरा-ढेरा खाना खाती और वक्त बेवक्त चीजा की फकियाँ मारती रहती। दो एक बार मालकिन ने उस अपना शैम्पू और टैलबन चुराते रंगे हाथों पकड़ा भी। खानसामा भी उसकी सोहबत में ढीला और ढीठ होता जा रहा था, वह ता ही ही। उधर से इधर और भाव बतान लगी थी। जब उनका कोई मित्र आकर 'फेशियल' को कहता तो उन बुलाय जाने पर वह एक ढीठपने से उन्हे ऊपर से नीचे तक घूरकर सिर को नीतरी कमरे की तरफ झटका देती, 'बसिए' और कूल्हे मटकाती आत्मविश्वास के साथ बगल पाँखे देखे भीतर चल देती कि वह आ भी रहा है या नहीं। यह बात और थी कि वह अवश्य आता। 'ले देकर एक शाम का समय होता है, उस वक्त ये लोग आ जाते हैं—' होठ चबाती पत्नी कहती। उस वक्त उसका जबड़ा कुछ चौकोर और चेहरा तना-तना हो जाता।

फिर एक दिन बिब्वो के घर से खत आया, जो किसी गाँव के पड़े लिखे ने बिब्वो के बाप की तरफ से लिखा था, कि बिब्वो के लिए उन्हें एक सड़का मिल गया है जो फौज में है और राक़ो-सूरत का भी ठीक ठाक है। बिब्वो की छोटी बहन कुक्कू सवा में आन को तैयार है उसकी तो जिंदगी बन जायेगी बगरह, बगरह।

"न कुक्कू, न कुक्कू बस इसी को भेज दो वापस। अच्छा बहाना भी है इस वक्त। पत्नी ने सतरा चूसते हुए कहा। बिब्वो उस समय बाहर कपड़े धो रही थी और पत्तिया की मेड के आसपास दजनो नौकर पतंग की तरह मँडरा रहे थे।

'पर फिर तुम्हारा काम कौन करेगा?' पति ने एक खरखाह मित्र की तरमाहट भरी दृष्टि से पत्नी का नाजुक जिस्म निहारा। "कोई यही की बूढ़ी बाई मिल जायगी, ज्यादा पैसा देकर। तुम चिन्ता न करो। सिर्फ इस भर पैक ऑफ कर दो, बर्ना खानसामा इसे लेकर किसी भी दिन छोड़कर चल दगा, फिर क्या होगा?'।

'तो तो है' पति ने सोचते हुए कहा।

तो एक दिन बिब्वो का विस्तरा बँव गया। उसके दो टीन के ट्रक कार में रंग दिए गये, दरी में बँधा एक अदद विस्तरा भी। पत्नी ने उसे एक

घण्टा जीवन, आदर्श, विवाह की जरूरत और नारी स्वतंत्रता के बारे में समझाया, जिसके दौरान वह सिर्फ हल्की, हल्की करती या उबासियाँ लेती रही। उसे और उसके फौजी को इस सबसे करना भी क्या था? न एक बार उसने पति-पत्नी को धन्यवाद दिया, न ही हँस या शोक जैसा कुछ व्यक्त किया। कुछ लोगों का कहना है कि टैंकरी के चलते-चलते उसने पूरे पड़ोस की खिड़कियों को हाथ हिलाया और कुछ मुसकरायी सी थी—पर हो सकता है यह उनकी कल्पना भर हो।

कुछ दिन के लोग बिम्बों को याद कर परस्पर हँसी मजाक करते रहे—फिर उसे भूल-सा गये।

## पितृदाय

दो हफ्ता से लगातार अस्पताल के जीने चढ़ते उतरते नर्सों डाक्टरों के पीछे लपकते, दवाइयाँ की दुकान के चक्कर लगाते, उमेश अब कतई पस्त हो गया था। यूँ पस्त तो आदमी दिन भर कालेज में पढ़ाकर भी हो ही जाता है, पर यह पस्ती उस पस्ती जैसी न थी। लाख उबाल हो या खीज उठे, फिर भी उसमें कुछ दर के लिए एक ऐंची-तानी खुशी तो मिल ही जाती है, जब कभी पानवाला प्रोफेसर साँव बहकर कम-से कम एक पान खाते जाने का अनुराध करता है, या कि वहन की चिट्ठी आती है जिसमें कहा गया होता है कि जहनी काम हर किसी के धूत का नदी और इसे करनेवाले को अच्छी गिजा लेनी ही चाहिए। इस पस्ती का ता ओर छोर ही नहीं था। मत्तर को पार की हुई बाबू की उम्र, पंद्रह साल पुराना ब्लडप्रेसर मधुमेह और अब फालिज का यह जोरदार हमला। किसी भी डॉक्टर ने उनके ठीक होने की पक्की आशा नहीं बँधायी थी। उसने भी नहीं, जो वहन का मेडिकल काउन्सिल में सहपाठी रह चुका था और इस नाते हर राउण्ड पर एक बार झाँक जाया करता था। सिरु दूर के रिस्ते की एक बुआ न, जो धुरु में खयर पाकर भरी दुपहरी में बस से अस्पताल आयी थी कहा था कि वही मे गेर की चर्बी मिन जाय, तो सुान हैं मुन्न अगो म उमकी भालिग से शक्तिपा लाभ

वहन को उसन चिट्ठी में सब हाल लिख दिया था। छुपाने-जैसा उनके

धींच कुछ था भी नहीं और उसके पत्र पाकर बहन के तड़प उठने या कलपने-जैसा भी कुछ रह कहा गया था। कम में कम अब इस वक्त, जबकि वह अपने पेचीदा तलाक के मसले से उलझती, दूर फिलाडेल्फिया की परदेसी बचहरियाँ बटखटा रही थी। उसका नीग्रो पति, जो सिर्फ बेकारी का मर-कारी मेहनताना खा रहा था, अपनी डॉक्टर पत्नी से तलाक के एवज में भरपूर हरजाना ऐंठने पर उत्तारु था और बहन कुछ अपने चुपेपन और कुछ पति के काँझ्या पेंचा के मारे जरूरी हमदर्दी का वातावरण नहीं बना पा रही थी। वैसे लिखा था बिचारी ने कि कुछ खर्चा भेजेगी, पर उस खास उम्मीद न थी।

क्या हाल हैं अब ?” कालेज में उसे देखते ही सब हमदर्दी से पूछते तो वह सुकड़ता हुआ बुदबुदा देता कि वैसे ही हूँ। इतनी नम, दयालु हमदर्दी और कुतूहल अभी तक उसने अपने ऊपर कभी नहीं घेंते थे। एने क्षणों में उसे अपना दो कमरे का घर बहुत याद आया करता। घर, जैसाकि वह माँ के जाने और बाबू के वापस आने के दरम्यान था। अपने सारे पपड़ियाएँ रागन और मक्खड़ी के जालों के बावजूद। चुप्पा, प्रदर्शनीन आकाशाहीन अपसाहीन—उपने नम्बर ग्यारह के बरमे और पीठ के हल्के बूबड़ कोलिये-दिय जिसकी ठण्डी हरी चूनदार गहरादया में गुडप होने को वह बतई आजाद था। आह ! क्या जा पायेगा वह वापस रहने को उस घर में ? रात को वह करबट लेता तो अस्पताल की चारपाई पसलियों की तरह चुभती थी। और सुबह ठीक साढ़े पाँच बजे जमादार जगा जाता था—‘टटटी-पसाव का बतन निकानना, साऽव !”

उसके मौकरी में लगन के बाद यह पहली बार बाबू घर आये थे। और बस दो दिन बाद ही यह हो गया। “आखिरी समै की मिट्टी अपने ही चहाँ ” बगरह लोग ने कहा था। पर उसे खास धकीन वकील नहीं हुआ। अगर बाबू बोल सकते तो अपने सूखी तरौई-से भूल आये जिस्म के बावजूद शायद बहन के पास वापस अमरीका जाने को कहने लगते। अब तो उनका घीन काढ़ भी बन गया था न ! फिर अमरीका घूम आने के बाद हिंदुस्तानी अस्पताला पर उनका विश्वास बतई नहीं रहा था। वैसे अस्पताल ही क्या, किसी भी हिंदुस्तानी चीज पर उनका विश्वास नहीं था, शुरू से ही।



“मुक्त चलाना जानता है तो बस अग्रेज,” अपनी अग्रेजी स्कूल की हेडमास्टर की दिना की याद करते हुए वे यही कहते। “हिंदुस्तानी की तो नस नस में जाहिलपना और कमीनगी होती है।” अपने दोना मातृहीन बच्चा को उन्होंने इसीलिए अग्रेजी स्कूल में पढ़ाया था कि उनके यहाँ से छूट भागने का मार्ग पैरस्त हो पाय। बहन हमेशा से जहीन थी। जहीन सुंदर, मुहफ्ट, दबंग। उसके बाल मेमो जैसे भूर, और रंगत बाबू-जैसी चक्क सफेद थी। वह खुद माँ पर पड़ा था। संबलाया, मुनहना सा जिस्म, पतली आवाज, जिसकी अग्रेजी पर बढ़िया स्कूल भी वह डेल कानेंगीदार सान नहीं चढ़ा पाया था जो लोगों को प्रभावित करती है, दोस्त जीतती है। बाबू को उससे काह आशा नहीं थी वह जानता था। इसी से बहन के बुलाने से जब वे तुरंत अमरीका चले दिये तो उसे अचरज, खुशी या शोक जैसा कुछ भी नहीं हुआ था। शायद वह जानता भी रहा हो कि एक दिन ऐसा ही होगा। घर का एक हिस्सा उसके लिए खाली था ही। खर्च के लिए बाकी घर का किराया था, उसकी रिक्च की ग्राण्ट थी। सबके जाने के बाद वह अपनी किताबा में बैन से गुडप हो गया था। पर रह कहाँ पाया ?

उसने आजिजी से ऊपर ताका। रमाकान्तजी प्रश्नसूचक निगाहों से उसे देख रहे थे। वे सीनियर प्राध्यापक थे और संस्कृत पढ़ाते थे। हर तरह का निजी सवाल पूछ पाने लायक भारतीय बुजुर्गियत उन पर हरदम तारी रहती थी। ‘कैसे हैं पिताजी?’ उन्होंने रजिस्टर रखा और तजनी के ऊपर का दाढ़ होले होले खोजसाने लगे। प्रश्न उसकी चुप्पी के बावजूद जवाब की प्रतीक्षा में टँगा रहा।

“वैसे ही है,” वह ढेर बाद जैन कुएँ के भीतर से बोला। एक गुागुनी पत्ती अधानक उसके टखना से दिमाग तक छा गयी थी। खिडकी के बाहर धूप वैसी भली लगती थी। वहाँ एक चिड़िया चहबहायी फिर बुप हुई। कौच पर एक भक्की फिसल रही थी बज ज ज। उसने जम्हाई ली तो आँखों में पानी आ गया। उसे अपने घर का पुराना पलग याद आया, जिसके गिलाफ सनलाइट साबुन की महक लिये होते थे, जिस दिन

वह उन्हें बदलता था।

‘आप ज्योतिषशास्त्र मानते हैं?’ रमाकान्तजी पूछ रहे थे। उसने कहा कि वह इस बारे में जानना-जानता नहीं ज्यादा सो

‘कई बार ग्रह गणित करा लेने से भी कष्ट निवारण होता है,’ शायद ऐसा नौद और हल्के पक्षे के दरम्यान रमाकान्तजी ने कहा। और यह भी कहा कि ‘बैसे तो सब ऊपरवाले के हाथ में है, पर अपना कर्तव्य तो करना ही हुआ, है कि नहीं? पितृदाय जो हुआ—बैसे अंग्रेजीवाले ये सब मानते-ऊनते तो नहीं।’

‘नहीं ऐसा तो नहीं।’ उसने हल्के से प्रतिवाद किया, ‘सिर्फ यह कि उसे जानकारी नहीं इन सब चीजों की।’

‘तो क्या नाम, हम देंगे?’ रमाकान्तजी ने तुरंत एक कागज झपट लिया और उस पर मनोयोग से अपनी मोटी मोटी लिखाई में नाम पता लिखकर उसकी ओर बढ़ा दिया—‘ये हमारे पुराने परिचित हैं। ज्योतिष तो जानते ही हैं—भूगुप्तहिता भी बहुत बढ़िया बाँचते हैं। पुराने आदमी हैं, पूछने पर कोई भी गली में पता बता देगा।’ काम खास था नहीं, पर्वी जेब में डकड़कर वह उठ खड़ा हुआ। जाये, एक सफा घर में भी झाँक आये।

घर वह आजकल सिर्फ पतलून कमीज बदलने और डाक देखने जाता था। क्लास परीक्षा की तैयारी के लिए बन्द कर दी गयी थी, सो वह सब काम भी नहीं था, घुले कपड़ा की नम तह खोलते हुए उस हल्का-सा दुख हुआ। कभी कैसे फुरसत से वह कपड़े बदलता, या छुट्टी के रोज देर तक उठना टालता जाता था, कसे देर तक मल मलकर नहाते हुए मुँह से पानी की पिचकारियाँ छोड़ता फोबट में मुदित होता रहता था। ठण्डे और बड़े-मे नहानघर में अम्मा की शादी के पीतल के दो बड़े गमाला में ठण्डा पानी भरा रहता। लोटा पुराना, बड़ा और मुरादाबादी था। खूब नहाकर खूब चूनेदार दो पान, फिर क्या था। चटपट दो चार लोटे डालकर उसने इस वक्त काम पूरा किया। एक बटन टूटा था, टाँककर कपड़े पहनना खत्म ही कर रहा था कि कुण्डी खड़की। पीछेवाले किरायेदार ने पिता थे। ‘कैसे हैं?’ उन्होंने बाबूजी के लिए पूछा। उसने दैनिक स्वास्थ्य बुलेटिन दिया। शेषाव उत्तर रहा है, जानकर वे निश्चिन्त हुए। देर तक सिर हिलाकर कहते

रहे "बस पेशाब तो नियमित रूप से उतरना ही चाहिए, गुर्दे चलते रह, तो आस बँधी रहती है। आस बड़ी चीज है बेटा।" उन्होंने उसके कंधे बड़ी बुजुर्गियत से थपथपाये, "गावाशी है तुम्हें, पितृदाय निभा रहूँ हा। वरना आजकल के जमाने में "उम्मे हल्की खीज-खी हुई। इतना तत्त्वज्ञान करने लायक आत्मीयता तो उनसे थी नहीं, आज मौका पाकर चढ़ डीढ़ें।

वह लायनेरी से दो चार हल्के उपवास लाया था और साव रहा था कि अस्पताल जाकर पड़ेगा। अगर बाबू ठीक ठाक रहे तो। "अच्छा चलू," उसने हाथ जोड़ दिये। वह शायद और मागदस्तन करना चाह रहे थे डमका, पर उन्हें जाना ही पड़ा। उसने कितानें हाथ में ली और ताला लगान लगा। चाबी घिस गयी थी और ताला बन्द होने में हमेशा देर लगती थी। जब चाबी जैब में डाली, तो कुछ सरसराया। उसने देखा, रमाकातजी वाला कागज था। वह सबकु अस्पताल के रास्ते में पड़ती थी, बस फर्लांग भर भीतर की मुड़ना होता। क्या करे? इन्हें भी आजमा ले क्या? स्कूटर को झटके से स्टार्ट करते हुए उसने सोचा, चलो यही सही। पन्द्रह दिना में दवाइयाँ तो सब आजमा ली गयी थी, अब तो पीठ और कूल्हा पर रुपये बराबर धाव भी पड़ चले थे, जिन्हें लेकर डॉक्टर और परधान थे। पितृदाय! रमाकातजी भी कहते थे इसे, चलो ठीक है।

अभी एकदम गर्मी तो नहीं आयी थी, पर आ ही चली थी, ऐसा कहा जा सकता था। पानी की उम्मीद थी नहीं। कमर के बाँचा में कागज बिप बाना होगा, उम्मे एक साइकिल से बतरात, उनीने आलस से सोचा। पर वह तो तब जबकि घरसौटना ही। वह फिर उदाम हो गया। गली फाउण्टेन-पन की एक दुकान के सामने से मुख्य सड़क की छोटकर भीतर मुड़ती थी। दुकान के ऊपर एक विराट पेन लगा था, टीन का बना हुआ। स्याही में लिपड़े बपड़े की एक सीर बाउण्डर पर पड़ी थी और दुकानदार ऊँच रहा था। स्कूटर की आवाज से भी उसने कोई उत्तेजना या उरमा नहीं व्यक्त किया। बगल में एक छोटी सस्ती पर गली का नम्बर था—सत्ताईस। यही गली थी। नीचे उबड़ू बैठा एक आदमी पेन्नाब कर रहा था। वह बगल की

परचून की दुकान के पास रुका। स्कूटर शायद भीतर जाये नहीं, उसने उसे दुकान के सामने रखकर ताता लगाया और काउण्टर के सामने जा खड़ा हुआ।

उस पुरानी और अँधेरी दुकान में कई चीजा की महक भरी थी। धूप-भरी आँखों की चौंध उतरने से पहले गंध चीजा का अता पता दे जाती सुतली के छीकदार बोरे, सूती धनिया, मिर्च, चावल, चाय और सोंफ। दुकानदार बूढ़ा था और उसके मोटे चस्मे के पीछे उसकी मोतियाबिंदी निगाह बेडोम थोर धुँधली थी। उसके सिर के पीछे के कैलण्डर में एक गदरायी लक्ष्मीजी रुपया की अथाह वर्षा करती मुसकरा रही थी, पर यहाँ ऐसा कुछ भी न था। जो भी था, हाथी या कमल या रुपया, वह उस छापे में ही सीमित था। तराजू सीधा करत दुकानदार ने ठोड़ी से भीतर को इशारा किया, “भीतर को जाकर बम्बे के पास से बायें मुड़ जाना—सैन बोर्ड लगा है।”

‘इधर ही से?’

‘और नहीं तो बिघर से?’ दुकानदार गद्दी उठाकर रेजगारी गिनने लगा। उसका मन हुआ कि दे बमबस्त को एक सापठ और सीधा वापस चला जाये। जाना कहाँ फँसा दिया रमाकान्तजी ने, बान का सीधा जवाब नहीं दे सक्ता था क्या? पर वह बाहर ही निकल रहा था कि दुकानदार ने कफ से घरघराती आवाज लगायी—‘ऐऽ भुनीऽऽ!’ लम्बे के पान एक ढीठ आँखोवाली लहकी एक सेलिहा कागज में कुछ लिये चपर चपर खा रही थी। वही ने चीखी—‘क्या है?’ उसकी आवाज खूब ऊँची और कुछ-कुछ फटी हुई थी। “जा जरा इह अपने माँ पौंचाई आ।” दुकानदार ने कहा।

‘जाओ ये पौंचा देगो,’ उसने उमेश से कहा। अब कोई चारा न था। मन मारे वह लहकी के पीछे हो लिया। लहकी कम से-कम तीन साल पुराना उटग फ्राक पहने थी। उसके पैरों में मैल और चोटा की पत्तें सी जमी थी। पहल उसने कागज गुड़ी मुड़ी करके नाली में फँका, फिर हथेली के पीछे से मुड़ पाछा फिर बोली, “चलो।” वे दोनों चल पड़े। ‘जरा स्कूटर का ध्यान’ उसने दुकानदार से कहा। उसने सिर हिला दिया, या शायद नहीं। गली के भीतर दोनों तरफ खुली नालियाँ थी और उनसे बीभत्स सड़ांध उठ रही थी। जगह जगह पाछाने की ढेरियाँ थी, एकाध दरवाजे की ओट स

साँवले निष्प्रभ चेहरे अनिच्छा से झंकि भी, फिर सिमट गये। धूप तज थी। वह पाँयचे बचाता चलने लगा। बम्बे के पास से वे लोग मुड़े। पुराना, सप रैल की छत का चूने से पुता भवान था। दरवाजे गहरे फीरोजी रंग से पुते थे। “येई है,” लडकी ने कहा और एक टाँग पर बूदती हुई वापस जाने लगी। दरवाजा बन्द था। उसने कुण्डी खटकायी। कुछ देर बाद भीतर से किसी के भारी पैर रगड़ते हुए चलने की आवाज उभरी। उसने दोबारा कुण्डी खटखटायी। “खोल रहे हैं।” भीतर किसी ने धीम धीमे दो-तीन चटखनियाँ खोली, दरवाजा पाँक-भर खुला।

“आप कौन?” दरवाजा खोलनेवाला साठेक साल का मुराया हुआ बूढ़ा था। नंगे बदन, बस धोती पहने, कपड़े पर मणोपवीत, दरवाजे पर रहे हाथ पर एक चमकती हुई अँगूठी।

उसने रमाकांतजी का नाम लेकर बताया। इस बार दरवाजा पूरा खुला। “आइए, भीतर आ जाइए।” स्वर अचानक मुलायम हो गया था। ‘आजकल दरअसल होली का बन्दा मारनेवाले बहुत आ रहे हैं। एक ही मुहल्ले में सात होली कमेटियाँ। कभी देखा, न सुना। न दो तो गाली-गलौज पर आमादा हो जाते हैं। आप बैठिए, मैं अभी आया।’

बूढ़ा भीतर गये। वह अपने को सहेजता हुआ कमरे की उन दो जबर कुर्सियों में से एक में बैठ गया। दीवारा पर जगह जगह ज्योतिषाचार्य के सर्टिफिकेट टँगे थे, एक आले में कुछ पुरानी प्लास्टर की मूर्तियाँ थीं कुछ मिट्टी के खिलौने—सेठ-सेठानी, बूढ़ा-बुढ़िया, बैण्डवाले। किसी का हाथ नदारद था, किसी का मुँह। कमरे पर भरसक यत्न से ढके हुए दारिद्र्य की छाप साफ थी। उसे खूब प्यास लग रही थी, क्या करे? वह उनसे पानी माँगे? उसने ससक्तीच सोचा। खिडकियाँ बन्द होने से कमरे में एक धूलिहा गंध भरी थी, जिसमें कई पुरानी बासों मिला गयी थी—छितराय बिस्तरे, पसीने, धूप बत्ती, चाय और चमड़े के जूता की। भीतर एक नल खुला, बन्द हुआ। उसकी प्यास पानी की आवाज पाकर और भी तज हुई। ‘जयन्ती मंगला काली भद्रवाली कपालिनी दुर्गा क्षमा शिवा घात्रा स्वाहा स्वधा नमोऽस्तुते’ हाथ में चार घुआँती अगरबत्तियाँ लिय बूढ़ा फिर कमरे में आये। उन्होंने घर की धुली कमीज ऊपर से और पहन ली थी—मग्न

बुदबुदाते हुए उन्होंने कमरे के चार छेदों में अंगरक्षकियाँ ठूँसी और हाथ काना पर लगाकर आँखें मूढ़ किसी अदृश्य शक्ति को प्रणाम करा लगे। उसे खीज हुई। ऐसे सटके उसे हमेशा उबाते रहे हैं। सामान्य ग्राहकों का प्रभावित करने के इनके आजमूदा मुस्के होते होंगे। पर वह थूँठे जाने से रहा। उसने अचानक अपने को आश्चर्य और मजबूत महसूस किया। पहले ठोक्-बजाकर इनको जाँच ले, फिर काम बतायेगा। कोई किसी का एहसान थोड़े ही है, अरे उन्होंने कहा तो चले आय, पर खुद परसे बिना थोड़े ही

“बहिए, क्या सेवा कहें आपकी?” बुद्ध दूसरी कुर्सी पर बैठकर उसे ताक रहे थे। बूढ़ों की अपेक्षा भरी यह कुरेदती दृष्टि उसे हमेशा हक्क का जाती है, पानी भीतर से लाख गुस्सा बकबक रहा हो, उसके मुह से दीन गुसाइ बोल ही फूटेंगे। उसे अचानक अपनी बेवकूफी पर गुस्सा आने लगा। पड़ा लिखा होकर भी इस सबमें फँसने आ गया, क्या जरूरत थी?

“जरा पानी मिलेगा?” उसकी आवाज कुछ ज्यादा ही रली थी शायद, “जरा चलते चलते गर्मी”

“हां-हां, अभी सीजिए—” बुद्ध कुर्सी से उठे—धीमे-धीमे जैसे बदन जबड़ गया हो। बाबूजी भी ऐसे ही उठते थे, जोड़-जोड़ बदन को सीधा करते हुए, “माफ कीजिएगा, आते ही तबलीफ दी।” उसने मुसामित से कहा। बुद्ध ने शायद सुना नहीं। वे तब तक पर्दा उठाकर भीतर जा चुके थे उसने पाया कि वह अपने अंगूठे का नाखून कुतर रहा है। यह उनकी पुरानी आदत थी।

पानी ठण्डा था और सुराही की महक लिये। बड़ा सा गिलास पीतल का था और घिसते घिसते उसने किनारे चाकू की धार की नाइ पतले हो चुके थे। एक साँस में पानी पीकर उसने गिलास रख दिया।

‘मेरे पिताजी बीमार हैं दरअसल। उनके ही बारे में प्रश्न’

‘नाम राखिए?’

“उनका तो पता नहीं।”

‘उनका नहीं, आपका।’

“कक् राशि मकर लग्न ।”

‘हम्म ! टाइम दविए जरा । अभी वा ।’ उसने टाइम बताया ।  
“जरा वो दवात दीजिएगा ।” बृद्ध ने एक कागज खींच लिया और रोगनाई में डुबोकर पुराने बत्तम में उस पर कुछ रखाएँ खींची, गुना, फिर लिखा । फिर उसे रखकर पीले वस्त्र में बँधा एक बस्ता सा उठाया और गठिय में सूजी जैंगलिया से उसकी गाँठ खोलने लग दीं धीमे धीमे । कमरे का धुंधला पन अगरवत्ती की गंध, पुराने घूलित कागजों की सरसराहट । उसे लगने लगा, जैसे वह जमीन के नीचे किसी तलघर में बैठा हो । फिर उस बतरतीव खयाल भाने लगे—‘पिताजी को ’”

बृद्ध ने हाथ उठाकर बोलने की मना किया और आँखें बंद किये कुछ बुदबुदाकर पोथी में बँधे ग्रन्थ का पन्ना सिर पर छुमान लग । वह हाठ भीचे चुप रहा, पर उसके भीतर एक चिड़चिड़ाहट फिर पनपने लगी थी । साला बताने नहीं देगा कि भज क्या है तो दवा क्या खाव

‘आजकल शुक्र और राहु दोनों ही लग्न से आठवें हैं, वह अंतर शुभ नहीं ।’ बृद्ध ने अपना लिखा कागज उठाया और बुधियायी आँखों से कुछ पढ़ा । “वत्तमान में गोघर में इसी स्थान पर शनि और राहु भी सप्ति में चल रहे हैं और मंगल चतुर्थ दष्टि से शनि को दख रहा है, जो उसका नैसर्गिक शत्रु है । अतः मानसिक और शारीरिक पीड़ा सम्भव है । पिताजी का स्वास्थ्य तो नम चलेगा ही, साम्प्रतिक हानि भी सम्भव है ।”

‘दखिए जाहिर है कि तक्लीफ है जमी आपने पास आय है । मेरा सवाल यह नहीं था ’”

‘डॉक्टर पुलिस और ज्यातिपी के पास अच्छे दिनों में कौन आता है ? क्या ?’ बृद्ध हँसे तो उसने देखा कि उनके अधिकांश दाँत गायब हैं और जो बचे हैं वे भी अत्र-त्य की हालत में हैं । हँसी के वेग से बृद्ध खाँसने लगे । फेफड़ों से उठती हुई बसगमी खाँसी । उस धिन-सी आन लगी । बेकार इनकी ले द म पड़ा है यह तो उसे खुद ही मालूम है । है कि नहीं ?

आप कहे तो मैं भ्रूगुसहिता की प्रश्न कुण्डली के आधार पर व्याख्या शुरू करूँ । बृद्ध फुसफुसाय । खाँसी का वेग रुकने के बाद भी आवाज अभी मद्धिम थी ।

उसने अपने को सयन कर स्थिति की बागडोर हाथ में ली—'देखिए, पहले मुझे बता दें कि आप फीस कितनी लेंगे, क्या-क्या बतायेंगे ? और इस पूरे, अम्म विधि विधान में कितना समय लगेगा ? मैं नौकरीपशा आदमी हूँ, हर बार दृष्टी लेकर यहाँ आना मेरे लिए सम्भव नहीं। मेरा घर भी दूर पड़ता है। आप कुल एक मुक्कन रकम बता दें, तो मैं सोच लूँ।' इतना कहकर उसने एक खिसियाई राहत महसूस की। इन लोगों से पहले ही माफ बात कर लेना ठीक रहता है, वरना अच्छे कपड़े दखें तो लगते हैं चौगुने वाम कूतन। वह फल का जाया नहीं है, जो इनकी नस न पकड़ सके। वावू भले ही उसे बोदा ममझते रहें

'सो तो है।' बुद्ध ने एक घरघराती उर्सास ली, "समय कम है, काम सभी का जल्दी होता है।" उसने बट से सिर उठाया, पर बुद्ध के चेहरे पर व्यग्न-जैसा कुछ भी नहीं था। वे आँखें बंद कर बोल रहे थे 'ससार में लोग जो कष्ट भोगते हैं न, वह हमेशा अपने ही लिए नहीं भोगते। समझे आप ? अपने मित्रों और शत्रुओं दोनों के लिए हम भोगते हैं—इसी से आप जो साधना या अनुष्ठान हमारी माफत परायेंगे, वह आपकी इच्छा से युक्त होकर आपके पिताजी को प्रभावित करेंगे ही—इसमें शक नहीं।' "

'वह सब तो ठीक है, मैंने आपसे रेट पूछा था।'

"देखिए" बुद्ध भेद भरे ढंग से आगे झुके, 'समय का आप लोगों के पास अभाव है। जो भी करना है, जल्दी ही करना होगा। है कि नहीं ? तो प्रहा की शान्ति के लिए जो अनुष्ठान जैसे एक हफ्ते या दस दिन तक करना होता है, उसे मुझे चौबीस घण्टों में ही करना होगा।'

"यानी आप फीस ज्यादा लेंगे, यही न ?" उमश ने रुखाई में जोड़ा।

"कच्चा कच्चा कच्चा, आप फीस की ही क्यो सोच रहे हैं ? मैं तो आपको बता रहा हूँ कि क्या करना होगा, फिर आप सोच लें "

घर—दरवाजा एक फौक खुला। उसके पीछे से एक जोड़ा काँदवा आला ने कमरे का मुलाहिजा लिया। यह वही छोकरी थी, जो उसे यहाँ लायी थी।

"आ सुरमती, अभी भाग जा, यही तो " भड से दरवाजा भेदकर शकल ओझल हुई। वह बुद्ध की लपेट भरी बाता से उकता चला था। उसे



गहग सशय होने लगा कि वह जानता वानता भी होगा या महज

वृद्ध ने शामद इसे भीषा, "देखिए, आपके मन में अभी काफी सशय है। है कि नहीं? चलिए मैं आपको दिखाता हूँ कि इस शास्त्र की महिमा क्या है। ठीक? फिर आप जैसा समझें।"

उसने सिर हिला दिया। वृद्ध ने कुछ बुदबुदाते हुए धीमे धीमे भगु-सहिता के जजर पने खोल लिये और सस्कृत का उत्पा कर बताने लगे—उनकी उँगलिया गठिय से सूजी थी और आँखें बार-बार पानी से भर आती—शायद रोहो की तकलीफ रही हो।

"जाति के ब्राह्मण हैं?"

'जी हाँ।'

'पैतक व्यवसाय—अध्यापन?'

"जी हाँ।"

"माता का असमय निधन पिता के प्रति मन में एक भय का भाव " "है।"

"ग्यारह वष की अवस्था में धातु के वाहन में टकराकर चेहरे के बायें भाग पर लण है?"

उसने बायी कनपटी के उस लम्बे घाव पर उँगली फिरायी। वह ग्यारह वष का था और स्वत्त की सीढिया से फिसलकर नीचे पड़ी किसी साइकिल पर गिरा था, पाँच टाँके आय थे।

'भगिनी तु "वृद्ध कुछ अटके, "बड़ी अजीब बात लिखी है, यदि आप बुरा न मानें तो पढ़ूँ।'

उसके माथे पर पसीना चुहचुहा आया था, "पढ़िए न।" उसकी आवाज भिँची हुई थी।

'भगिनी स्लेच्छ कुल में विवाहित होगी और उसका पति, यानी आपका जामाता "वृद्ध बभरत, महाव्यभिचारी और पत्नी विमुख "

उसकी आँखों के सामने सुमति का उदास चेहरा तैर गया। उस हरामखोर जैपरी ने अपनी डॉक्टर पत्नी से भरण पोषण पाने की दरहवास्त ही नहीं दी

थी, यह भी कहा था कि नशीले द्रव्यों का चस्का उसको उसकी डॉक्टर पत्नी ने ही लगाया था और अब वह किसी काम के लायक न रहा था। 'सोचती हूँ सब छोड़कर वापस हिंदुस्तान लौट आऊँ।' सुमति ने लिखा था, 'प्रेक्टिस का क्या है, कहीं भी चल जायेगी।' पर बाबूजी भभव उठे थे, "इस दलिद्री देश में आकर क्या अपना सिर खाती? कहीं तुम्हें वहाँ आने को लिखती, उल्टे खुद लौटकर इस नरक में आने को तैयार थी। मैंने मना कर दिया एक-दम। फूलिश सैण्टिमेण्टल गल। आय सैंड नो।" सो बाबू ने मना कर दिया और सुमति नहीं आयी। क्या पता, कहीं उसे खुद भी नशीले द्रव्यों की लत न पड़ गयी हो?

"एक गिलास पानी और मिल सकेगा?" उसके कानों को अपनी ही आवाज अजीब कनसुरी और रिरियायी हुई लगी। बूढ़ फिर उठे और बाहर गये। घर में शायद उनके अलावा और कोई नहीं रहता था। वही कोई बाहट, फुसफुमाहट, कुछ नहीं। हो सकता है, घर के लोग दोपहरभर को वही बाहर गये हो।

उसने पानी का गिलास धाम लिया और सहरा सहराकर पीने लगा, जैसे उसकी जान का एकमात्र सहारा वही हो। पीकर उसने गदेली से मुह पोछा, तो उसे वह छोटी सी लड़की याद आयी। क्या नाम था उसका? हाँ, सुरसती।

'वह छोटी बच्ची?' उसने बाहर इशारा किया।

'हाँ, मेरी धेवती है,' बूढ़ ने कहा। वे तबि की दन्त-खोदनी से अपनी दन्तपक्ति का रहा सहा भाग खोद रहे थे, 'बताइए, क्या निश्चय किया आपने?'

उसका मन एक अजीब तरह से निश्चित सा हुआ—चलो कोई ता है इनकी देख भाल को। 'ठीक है, पूजा आप कर डालिए। पर कितना हुआ, ठीक-ठीक बताइएगा?' उसने अपने पस की ओर हाथ बढ़ाया। क्षण भर को हाथ बढ़ाते बढ़ाते उसका सशय फिर उभरा, फाँस लिया न बूढ़े ने जाल में? सँर, पर्स निकालकर उसने हाथ में लिया। "कितना?"

बूढ़ की आँखें पस पर निर्निमेष जड़ी थी— पूजा-सकल्प का इक्यावन हुआ, सामग्री और दक्षिणा का तीन सौ। एक लाख जप होगा, सौ ओर—

कुन चार नौ इक्यावन होमा <sup>४४</sup>

क्या ?” उसका मुह खुला रह गया। “तीन सौ की सामग्री। क्या क्या लेंगे आप ?”

‘मिष्ट पूजा तो आपको ही करानी है। है कि नहीं ?’ बद्ध ने मुह बिगाड़कर एक खट्टी सी ठकार सी और सीना मलन लग। बाजी अब उनके हाथ में थी और उहे यह अच्छी तरह मालूम भी था। “आपके हमारे काम में सामग्री थोड़ी घटायी या हटायी जा सकती है, पर पूजा-सामग्री तो एक दम इन्हान हाथ से बमल का आकार बनाया, “सम्पूर्ण होनी ही चाहिए, वरना क्या फायदा ? गरज तो हमी को है। है कि नहीं ?” पोरों से पोरों को टिक्कर वह भेद भरे सहयोगी भाव से उसे ताकने लगे, “मज तो बड़ा है ही। उम्र भी हुई—सामग्री में सभी होगा—घृत, बेसर, कस्तूरी अगुरु, चंदन वैसे आपको इच्छा।’ वह तोते की तरह आँखें पलटकर छत को ताकने लगे। उनमें पस से सौ-सौ के चार नोट निकाले, एक पचास का और एक चाँदी के रुपये का सिक्का, और सामने रखकर उठ खड़ा हुआ।

तो उसकी रसीद या कुछ ” उसने हाथ से हवा में रसीद लिखन की मुद्रा बनायी।

रसीद क्या करोगे ?” बद्ध बलान भाव से हँसे, “मरीज का ठीक हाना ही रसीद नहीं होगा क्या ? आज फाल्गुन की द्वादशी है—आज ही से जब सामग्री जमा करके

‘क्या मैं आकर देख

‘क्या करेंगे ? वैसे भी न तो मैं आपको समय आयेंगे और न ही विधि, क्या ?’ बद्ध उठ खड़े हुए, ‘ऊपरवाले का भरोसा रखिए, सब ठीक हो जायगा।’

वह बाहर निकला तो दिन ढल चुका था पाँचके बचाता वह दुकान तक पहुँचा। उसके स्कूटर के पास कुछ बच्चे कचे खेल रहे थे। उही में वह उटग भौंकावाली भूबरी लटकी भी थी। उसे देखकर वह भेद भरे ढग से मुस्करायी और फिर अपने दोस्त से खुसर-मुसुर कर कुछ कहने लगी। वे

दोना उसे विलौटो की तरह धूर धूरकर हँस रहे थे। हाठ भीचे बीच उसने स्कूटर स्टार्ट किया और बाहर जा गया। उस सँकरी तग गली में अभी जो घटा था, बाहर चौड़ी सड़क में आकर एक दु स्वप्न सा लग रहा था। मिवा इनके कि वह चार सौ इक्कावन रुपये गिन आया मूर्खों सरीखा, न कोई रसीद, न पता। बूढ़ा मुकर जाये, तो वह क्या करेगा? जानते-बूझते भी पमा उगल गया। ठोक कहते थे बाबूजी, “कोच्छ नहीं होत का उसस।” बाबूजी की बीम माल की पैनाई हडमास्टरी निगाह ने सभी उसकी वक्त कूत ली थी, जब वह आई ए एस की परीक्षा के ख़ाब देख रहा था। “अपनी औकात और दिमागी कूत देखकर ही ख़ाब पालन चाहिए,” वे प्रायः उसे सुनाकर कहते थे। वही हुआ। उसे आँखों की बजह से अनफिट करार द दिया गया। जिस दिन आई ए एस की परीक्षा का नतीजा आया वह मुँह छिपाये पड़ा रहा, फिर प्राध्यापकी के लिए छोटे मोटे नस्बई कॉलेजों में आवेदन पत्र भेजने लगा।

तो फिर क्यों चले आये उसके पास बाबूजी? रहते वही अमरीका की चक्कमक बस्तियों में, अपनी चहनी बेटी के साथ। पर शायद व बेटी का तलाक़ का गड़बड़झाला ख़रम होने पर ही लौटना चाहते थे। छोटा शहर था, जफरी ने अपनी कहना गाथा को एकाध अखबारों में छपा दिया था। गरीब के लिए कहना वहाँ बड़ी जल्द उमड़ती है न। गुस्सा भीचत हुए उसने लिफ्ट का बटन दबाया। इतने दिना में लिफ्टवाला भी उसे पहचानन लगा था—उसे देखकर ख़ुपचाप पाँचवीं मजिल का बटन दबा देता।

बाबूजी वैसे ही थे। स्थिर टकटकी बांधे सामन ताकते। प्रा-वेद नस एक अनावश्यक चहक से उनका मुँह पाछ रही थी—‘देखिए, आज पिताजी न आधा कटोरी दलिया लिया—एक औंस सूप भी। ऐसे ही गुड बॉय बने रहे तो बस हफ्ते भर में छुट्टी।’ फिर सूई में दवा भरकर उसने सूखी चीमड बाँह में भोक दी और स्थिर से मलकर यह जा, वह जा।

‘पेपर।’ बाहर ईवनिंग पेपरवाला लडका खड़ा था। उसने अखबार लेकर पैसा दिया और भीतर आया। बाबूजी कुछ उक्-उक्-सा कह रहे थे। “क्या है बा’जी?” उसने नरमाई से पूछा। घड़ी देखी, शाम के पाँच

कुन बार भी इक्यावन होणा "

'क्या?' उसका मुह खुला रह गया। "तीन सौ की सामग्री। क्या क्या लेंगे आप?"

"दमिए पूजा तो आपको ही करानी है। है कि नहीं?" बट ने मुह बिगाड़कर एक सट्टी सी डकार ली और सीना मलन लगे। बाजी अब उनके हाथ में थी और उ हे यह अच्छी तरह मालूम भी था। "आपके हमारे काम में सामग्री खाड़ी घटायी या हटायी जा सकती है पर पूजा-सामग्री तो एक दम।" "हम हाथ में कमल का आकार बनाया, 'सम्पूर्ण होनी ही चाहिए' करना क्या पायदा? गरज तो हमी को है। है कि नहीं?" पोरों से पोरों को टिकाकर वे भेद भरे सहयोगी भाव से उसे ताकने लगे, 'मज तो कड़ा है ही। उम्र भी हुई—सामग्री में सभी होगा—घृत केसर कस्तूरी अगुरु, चंदन यम आपकी इच्छा।' वे तीस की तरह आँखें पलटकर छत को ताकन लगे। उमन पस से सौ-सौ के चार नाट निकास, एक पचास का और एक चाँची के गप्पे का सिक्का, और सामने रखकर उठ खड़ा हुआ।

'तो उनकी रसीद मा कुछ' उसने हाथ से हवा में रसीद लिखन की मुद्रा धनायी।

"रसीद क्या करोगे?" बट क्लान भाव से हँस, "मरीज का ठीक होना ही रसीद नहीं होगा क्या? आज फाल्गुन की द्वादशी है—आज ही स जप सामग्री जमा करके'

क्या मैं आकर देख

'क्या करेंगे? वैसे भी न तो मैं आपको समझ आयेँगे और न ही बिधि क्यो? बट उठ खड़े हुए, "ऊपरवाले का भरोसा रखिए, सब ठीक हो जायेगा।'

वह बाहर निकला तो दिन ढल चुका था, पाँचवे बचाता वह दुकान तक पहुँचा। उसने स्मूटर के पास कुछ बच्चे कबे खेल रहे थे। उन्ही में वह उदग मौकवाली भवरी सड़की भी थी। उम दखकर वह भेद भरे दण्ड मुस्करायी और फिर अपने दोस्त से सुमर-मुसुर कर कुछ कहने लगी। व

दोना उसे विलोटा की तरह धूर धूरकर हँस रहे थे। हाठ भीचे नीचे उमने स्कूटर स्टार्ट किया और बाहर आ गया। उस सँकरी तम गली में अभी जो पटा था, बाहर चौड़ी सड़क में आकर एक दुःस्वप्न सा लग रहा था। मित्रा इसके कि वह चार सौ इक्कावन रुपये गिन आया मूर्खों सरीसा, न कोई रसाद, न पता। बूढ़ा मुकर जाये, तो वह क्या करेगा? जानत है उसके पड़े-लिखे होने को सरे-आम मूढ़ा गया और जानते-बूझते भी पमा डगल गया। ठीक कहते थे बाबूजी, “कोच्छ नयी होने का उससे।” बाबूजी की बीस साल की पैनाई हडमास्टरी निगाह ने तभी उसकी वक्तव्य ली थी जब वह आई ए एस की परीक्षा के ख़ाब देख रहा था। “अपनी आँकत और दिमागी बूझत दखकर ही रवाब पालन चाहिए,” वे प्रायः उस सुनाकर कहते थे। वही हुआ। उसे आँखों की वजह से अनफिट करार दे दिया गया। जिस दिन आई ए एस की परीक्षा का नतीजा आया, वह मुह छिपाये पड़ा रहा, फिर प्राध्यापकी के लिए छोटे मोटे कस्बई कॉलेजों में आवेदन पत्र भेजने लगा।

तो फिर क्या चले आये उसके पास बाबूजी? रहते वही अमरीका की चक्कमक बस्तियों में, अपनी चहेती बटी के साथ। पर शायद वे बेगी का तलाक़ का गडबडझाला खत्म होने पर ही लौटना चाहते थे। छोटा गहर था, जैकरी ने अपनी कण्ठा गाथा को एकाध अखबारों में छपा दिया था। गरीब के लिए कण्ठा वहाँ बड़ी जल्द उमड़ती है न! गुस्सा भीचते हुए उसने लिफ्ट का बटन दबाया। इतने दिनों में लिफ्टवाला भी उसे पहचानने लगा था—उसे देखकर चुपचाप पाँचवीं मजिल का बटन दबा देता।

बाबूजी वैसे ही थे। स्थिर टकटकी बाधे सामने ताकते। प्राक्वेट नस एक अनावश्यक चहक से उनका मुह पाछ रही थी—“देखिए आज पिताजी ने आपा कटोरी दलिया लिया—एक औंस सूप भी। ऐसे ही गुड बाँय बने रहे तो बस हफ्ते भर में छुट्टी।” फिर सूई में दवा भरकर उसने सूखी घीमड बाँह में भोक दी और स्प्रिट से मलकर यह जा, वह जा।

“पेपर!” बाहर ईवनिंग पेपरवाला लडका खड़ा था। उसने अखबार लेकर पैसा दिया और भीतर आया। बाबूजी कुछ उक-उक् सा कह रहे थे।

“क्या है बाँजी?” उसने नरमाई से पूछा। घड़ी देखी, शाम के पाँच

वजे थे। "अपबार सुनेंगे?" व बार बार गरीर का अश्वन भाग उठाने की चप्टा वर रह थे, "पहला पना?" उसने जब स चश्मा निवालकर लगाया जोर पढने लगा—"अफगानिस्तान की चेतावनी चार प्रसिद्ध सटोरिय गिरफ्तार तथाकथित " अचानक बड़ी जोर के उवाल के साथ उल्टी का एक रेला बाबूजी के नाक-मुह से निकला और चादर पर दूर दूर तक जा फँसा। उनकी आँखें कुछ अजीब ढंग से टँग सी गयी, और गले से गा गा होने लगी। उसने अखबार दूर फेंका और घण्टी जोरो से दवा दी, फिर तौलिया लेकर साफ करने में जुट गया। पूरा कमरा खट्टी महक से भर गया था। नस आयी दोनों ने कपड़े बदले। तमाम जो धिना गया था। चादर बदलकर, खराब हुई चादर उठा ही रहे थे कि डॉक्टर लोग राउण्ड पर आ निकल। इनमें एक वह हँसमुख गुदाज बदन का अघेड उम्र डॉक्टर भी था, जो सुमति का सटपाठी हाने से बा'जी के प्रति अधिक सदयता बरतता था। उसके पास स हमेशा हमेशा आफ्टर शेव की बढिया खुशबू आती थी और नसों से उसके रम भीने मजाक चलते रहते। बा'जी को चौंक कर तक्रिया थपथपाकर वह बाहर निकल आया। पीछे-पीछे वह भी आया। "देखिए, आपसे छिपाना क्या? अब तब का ही हिसाब है। आपके घर में कोई है नहीं। जाप दिन भर बाहर रहते हैं पीठ पर बिस्तर से तमाम घाव बन गये हैं, उनसे और भी खतरा है इफ यू लायन कुछ दिन यही रहने दीजिए—आई नो इट इज एक्सपेंसिव क्या?" "ठीक है"—वह लौट आया। बा जी मोद और बेहोशी के दरम्यान की भूम में डूब गये थे। वह बाहर बालकनी में निकल आया। इतने दिनों के ही कुल पाँचक हजार के करीब हो गये होंगे। खबर पाते ही सुमति ने डॉक्टर भेजने के लिए लिखा था, पर सुमति अगर न भेजे तो वह माँगन थोड़े ही जायेगा? वह भी इस वक्त जबकि वह बेचारी खुद इतनी दिक्कत से जूझ रही है। ऊपर से गधा सरीखा वह चार सौ इक्कावन रुपये उस पण्डित को दे आया। न रसीद, न कुछ। अचानक उसने तय किया कि वह जाकर उससे रुपया वापस ले आयेगा। कहीं बेसर मस्तूरी के हयन से खून के जमे घक्के पिघलेंगे मला? उसी की अकल में पत्थर पड़ गये थे पर मान लो अगर बूढ़ा मुकर गया तो? स्कूटर पर एड लगाते उसने सोचा तब की तब दखी जायेगी।

रात उतर चुकी थी, गली में मुड़ते समय उसने घड़ी पर नजर डाली—साढ़े-आठ। गली में वक्तियाँ भी नहीं थी, पर चाँदनी थी। कुछ कुत्ते खूँखार ढग से भूँके। उसे चौदह सुद्यों का खयाल आया—लो, बोड पर खान। शनि मंगल को देख रहा है—उसे बूढ़े की बात याद आयी। क्रोध ने ठिठकते पैरा में अचानक तेजी भर दी। चोर वही का। स्कूटर को वही भाड़ में खड़ा कर उसने ताला लगाया और आगे बढ़ा। बम्बे से वहाँ तक चुप्पी थी—कहीं किसी न थी म तड़का लगाया। एक छौऽ की आवाज के साथ गली की बदबू को काटती एक मीठी घरेलू गंध उठी, फिर बिसा गयी। भरसा हो गया अच्छा खाना लाये, नहीं? वह दरवाजे के आगे थमक गया। वहाँ बड़ा-सा ताला पड़ा था। अब? गये उसके रुपये? उसने हताशा से सोचा। क्या करे वह? लौट जाय? नहीं लौटे, क्यों? कम नहीं होते चार सौ इक्कावन रुपय। पेट्रोल जो फुका सो अलग। क्या कर? कहीं पास में पूछे? हो सकता है पूजा की सामग्री लेने बाजार गये हों। उसने बगल की कुण्डी खटखटायी।

“क्या है?”

एक भयातुर नारी-कण्ठ भीतर से काँधा। एक बच्चा वहीं रोने लगा—“चुप कर।” नारी कण्ठ बच्चे पर बरस पड़ा। रोना और तेज हुआ, ‘कहाँ न, कौन है?’ फिर वही भयपूर्ण स्वर।

“बगलवाले पण्डितजी कहीं गये हैं क्या?” उसने स्वर ऊँचा किया।

‘गये होंग, हम पता नहीं।’ स्वर बच्चे को चुपाने लगा। वह इधर-से-उधर निरुद्देश्य घूमने लगा। अच्छा फँसाया रमाकान्तजी ने उसे। सोचते होंगे कि छडा है, इसे वैसे की क्या कमी। फिर बहन अमरीका में है, जहाँ रुपया बरसता है। क्या पता पण्डित से बेकमीशन खाते हों ‘क्या ठिकाना?’ नहीं, आजकल किसी का ठिकाना नहीं। उसी जैसे मूल होत है जो उल्लू बन जाते हैं। ये रमाकांत टाइप के लोग अपना अधेला भी फिजूल खच नहीं करेंगे—दूसरा से कहेंग भ्रमुमहिता बँचवाओ। बाहू बेटा। क्या कहने। गुस्से से फनफनाते हुए उसने ठोकर स कक्कड़ दूर फेंक दिया। तड़ से जाकर वह फिर उसी दरवाजे पर लगा। इस बार चंद क्षणों में ही धड़ाक से दरवाजा खुल गया। ‘क्या है बे? गरीफा का मुहल्ला है य रात गये यहाँ क्या हल्ला गुल्ला कर रहा है ऐं?’ एक तगडे गठीले जिस्म का गुण्डा-



टाइप आदमी दरवाजे पर खड़ा था।

‘पण्डितजी से काम था। वो मृगुसहितावाने।’

“पण्डितजी से काम था।”

युवक ने उसकी नवल उतारी — ‘रात साँचे बाँठ बजे साँचे माँ के खसम मृगुसहिता बँचवान आयेगे। पण्डितजी मय बागीवास करन को। ज फूट।’

“कब जायेंगे?”

“हमे लिखने नहीं देखे। अब चलो।” आदमी ने एक कदम आगे बढ़ाया। वह डरता ठोकर खाता खींचता वापस हो लिया। उसकी मुट्ठियाँ भिची हुई थी और आँखों में अपमान के आँसू थे—देख लेगा सब साँचा को, सब उसको धोखा देते हैं, एक-एक को गिन लेगा वह।

‘टैम से आया नरो, बाबूजी—बसे आप तो पहचान के हो, पर सिस्टर हमको डाँटती है।’ चौकीदार ने भलमनसाहस से लिपट का बटन दबाते हुए कहा। वह होठ चबाता रहा। कमरे में सब वैसा ही था। गान्त करुणा। धवा म गंधाता। उसने ऊँघती नस को बिदा किया। नाइट लाइट जल रही थी और बा’जी चुपचाप टकटकी लगाये सामने ताक रहे थे, उसी तरह जस वह लिटा गया था। बस सीना भर उठता गिरता। नस की पदचाप दूर होती गयी।

सब तुम्हारे कारण हुआ, वह कमरे का दरवाजा बंद कर दर स्वर म फूट पड़ा, “सात समंदर पार से मरने को यहाँ आना था तुम्हें? जन्म भर मुझे नफरत से देखा, फिर मेरे ही मत्थे भरने आय। ठण्डा हुआ जी तुम्हारा मेरा अपमान करावे?” उसके आँसू वह चले थे, उसने सुरसती की तरह हाथ से उह पोछा ‘पहले अपनी ऐंठ से घुसा घुसाकर माँ को मारा फिर सड़की की गहस्थी चूस खायी, अब मुझे खा लो। भरते भी नहीं कि पिण्ड छूटे हमारा। अचानक उसने जबान रोक ली और हक्का बक्का ताकने लगा। यह गुबार उसी के मुह से निकला था क्या? और यह क्या? बा’जी हँसे क्या? या कि फालिज से टेढ़ा पड़ा मुह काँपा? उसने देखते-ही-देखते बस एक हिचकी आयी और बा’जी खत्म हो गये।

## कुत्ते की मौत

जब वे उस लाये थे तो उसकी आँखें बम खुली ही थी। घुनकी रुई व फाहे सा गदबदा ललछौंहा पिल्ला, जिसका अपना बदन खुद उसके लिए भी एक अजूबा था। हर एक-एक कदम वह सडसडा सडसडाकर बढ़ाता था, अपने पंजा की लकड़ स अपनी देह का भार टोहते हुए। फिर जब कुछ कुछ मूलते हुए, रेंगते हुए वह हर हसेली म धूमन घुसाकर माँ का स्तन बूढ़न लगा तो अचानक माँ को लगा कि वे लोग उसे जल्दबाजी म ही उठा लाय थे। यह बड़ी खराब आदत थी उन लोग की। मौने की मुलायमियत स जमिभूत होकर बात की औकान और अपनी जिम्मदारी की गम्भीरता भुला बैठना। आगिर पिल्ले को वे देखने भर ही तो गये थे। कोई स्टाम्प लगाके दरहवास्त तो नहीं दी थी कि वे ही नेंगे पर जब देख लिया तो कहने म जजीब मँप सी लगने लगी कि नहीं लेंगे। हालाकि वे पिल्ले काफी भदे थे सभी। बेसी कुतिया वे भोडे पिल्ला का घर ले जाने को जान-बूझकर लाग उही सरीखे मूखों को बुलाते हागे। माँ मन ही मन अपने को कोसने लगी, पिता भी। उही के से लोग के सहारे तो माया ससार को बस म किय रहती है है कि नहीं? जो हर वार जिदगी के सुयरेपने मे अपन आप बेवजह एक बेहूदी खलबली मचाकर निरीहता से वह बस एक मुहलत और मागने लगते हैं, प्यार करने की, तरने की।

“अब क्या खिलाना है इसे?” गाल पर हाथ रखकर वह बोली। पिता

बच्चा व माथ घुटना के वन बैठा निहाल हो रहा था। अपनी सारी खुशहाल के बावजूद उसने भी अपन जापको धीमे धीमे निहाल होता पाया। यहाँ तक कि अंत में वह भी पक्ष पर उकड़ू बैठकर उसे आ-आ करन लगी।

उस सारी रात पिल्ला न खुद सोया नहीं उसने किसी को सोन दिया। जाड के दिन थे। टोकरी में बिछे शाल के बावजूद उसे अपनी माँ की बदन की गर्माई नहीं मिल पा रही थी। एक पतली आवाज में देर तक कणकटु कृ क करता रहा जैसे खूब जम-साय पहियोवाली गाड़ी खेंची जा रही हो और वे सब बारी-बारी से चल्ताते और उसे झुपाने के उपाय सोचते रहे। सभी किसी को याद आया कि उसने पता था कि अलाम घड़ी के टिक टिक से पिल्ले चुप हो सबते हैं। जलाम घड़ी सायी गयी। ले-लेकर पूर घर में यही तो एक अलाम घड़ी थी। माँ हर बार यह बात दुहराती थी जब भी बच्चे उसके बारीब से दहलानेवाली तजी से खेल में भगन गुजरते या पिता उसे चाम्बी दना भूल जाता। इस बार भी उसने वही बात दुहरायी। तब एक छोटे अँगोछे में लपेटकर घड़ी पिल्ले की बगल में रख दी गयी। कुछ पल वह चुप रहा। शामद घड़ी की टिक टिक से नहीं, बल्कि उनके सजग सातिन्य से पर फिर यकायक रो पड़ा। की-स-स उसके हिलने से अलाम की कोई बल भी हिल पड़ी शामद और धन भर को उसकी 'की की' के ऊपर धनधनाता कक्का अलाम भी बज उठा। तब कुछ हँसते, कुछ सीपते कुछ झेंपने पिता ने घड़ी टटा ली। इन सारी नकनीयत पर बेहूदा और नाकाम याव प्रक्रियाओं से गुजरते गुजरते सडक पर दूधवासा की सायकिलो की खटर पटर भी चालू हो गयी थी।

उफ दलो तो सवेरा हो गया है, अब इस बेहूदा बला को हटा ही दना है—माता पिता ने एलान किया। बच्चे चुप रहे। फिर खेलने चल दिये, समझदारी से।

खेत में घर आते ही बच्चा न गोली सा प्रश्न दाया, 'इसकी जात क्या होगी माँ ?'

‘किमन पूछा?’ पता चना कि इत्ती की मौमी ने। इत्ती का घर उनके घर से सटा हुआ था। भरी भरी छातियावाली जीरता का एक भुण्ड सना नसकी बाल्कनी पर मुझे सलवार कुर्ते में, बगैर दुपट्टे के लट्ठा-खट्ठा पडाम पर गीघ सी खुदबीनी नजर गड़े रगता था। व इत्ती की मौसियाँ या या बुआएँ भी हो सकती थी, क्योंकि दिन सत्रको वह आण्टी बुलाती थी। एक पदम माँ भी थी शायद, क्योंकि कभी मम्मी की गुहार भी लगती थी। इत्ती का पिता बनसजूरे से पनली मूछावासे एक अधगजे और बेवजह पुलकित रहनेवाले इन्सान थे, जो लिजाब के बन से जाती जवानी की दुम पकड़े अभी तक लटके हुए थे। हमेशा स्कूटर से उतरकर वे अंग्रेजी धुन गाते हुए सीढ़ी चढ़ते थे। उनसे नमस्ते कहो तो हल्लो कहते थे और माँ को देखकर बड़ भदब से गुडमानिग बगैरह भी।

माना पिता को वे फूटी आँखा नहीं सुझाते थे, वे भी और चपाती सी छातियावाला उनके घर की वे ओरतें भी, जो निरंतर बुनाई के चीर सहराती हर फेरीवाले का ककश स्वर में मजाक और तकरार करती थी, पर इनके बावजूद दोनों परिवारों में एक सभ्य हुआ मसाम का नाता बरकरार था। ‘जात? अरे कुछ भी होगी,’ माँ ने किंचित् तल्लीन वे कहा, ‘कह दो कि देसी है। इसकी माँ माथुर साहब के घर में परच गयी थी, सा उठा लाये।’ और फिर उमने यह भी कुछ कककर कहा, ‘दुनिया-भर का पिल्ले की जात-पाँत की खबर करना भी ऐसा क्या जरूरी है? जिह जरूरत हो सो बडिया नसलवाले छाँटके ले आयेँ, हाँ नही तो। अर, जब साथ हैं तो पालेंगे ही। गृहस्थ के घर में हर किसिम के जीव पलते हैं कि नही?’

सो देखते देखते पिल्ला पल भी गया, नामकरण भी हो गया, लालू। लालू उस्ताद। अपनी छोटी छोटी भूरी आँख सिनोडकर वह जब देखता तो सब में गुण्डा लगता था।

‘क्या ये, जेल जायेगा?’ बच्चे एक लम्बी सुतली पहरा रहे थे। वह भी उमने नाच-नोचकर खेलने लगा, जमे हथगडी छुड़ा रहा हो। माँ ने कहा कि पता नही ऐसी भापा ये वहाँ से सीख आते हैं। खबरदार, पर लालू उस्ताद चोर चोर खेलते रहे। पिल्ला हिल गया था। और फिर से एक बार उनका निणय भी।

ज्या ज्यो लालू बढ रहा था, उसकी देसी नस्ल भी स्पष्ट होती जा रही थी। गुलाबी और लम्बा यूयन, कुछ-कुछ लोमड़ी का मा चेहरा, शब्ददार पूछ, और नीचे की दबे कान। पहले बच्चे ने कहा कि उसके कान खड़े होन लगे हैं, अल्मेशियन की तरह पर कुछ शोध के बाद पता चला कि वह चीबना होने पर काना को खड़े करन का आभास भर दता था। दुम तो टेनी रहनी ही थी, रही। एक बात थी, जो कतई छुप नहीं सकती थी और वह था उसका खौरहापन। या तो कभी उसे किसी सायबिल सवार न टक्कर मारी थी या फिर किसी ने डण्डे से मारा था, क्योंकि एक बार वह लेंगडाता-सा घर में आया और कई दिना की दवाई सिबाई के बाद ठीक हो पाया।

और इसके बाद वह हर सायबिल सवार या डण्डा पकड़े आदमी का पक्का दुश्मन हो गया था। एक बार माँ घर में नहीं थी तो एक आदमी दरी तक सड़क से उनकी लिटकी को ताक-ताककर चिल्लाता रहा कि इस कुत्ते की खातिर उन्हें कभी जुरमाना दना होगा, वे समझ लें, राह चलता साले ने मुहाल कर रखा है, बगरह। अब घर के अंदर लालू सिफ रात में जाता था और अपना खाना खाकर अपनी एक निश्चित जगह पर बैठकर गम्भीरता से सो जाता था। और कुत्ते की तरह उससे तुलनाकर बचकाने खेल करो तो वह अपनी पीली आँखें सिकोडकर टिकारत से हट जाता। खूग होने पर वह खड़ा होकर दुम हिलाता था और कभी-कभार माँ का हाथ चाट भी लेता था, पर उसके सिर के पास लाल सुनहरे बालों का जो भँवर था वहाँ वह किसी को हाथ न रखन देता था। कभी भी। माँ को भी नहीं।

बैठकलाने में भी खास दाहिने कोने में एक जगह उसने अपन खास अड्डियाल ढग से हथिया ली थी, माँ के प्रतिवादा की ऐसी की तेसी करन हुए। एक दो बार उन लोमा ने उसे वहाँ से हटाना चाहा, पर गुरोहट स डरकर हिम्मत नहीं हुई। छोडो भी, उन लोमा न आजिजी से कहा जो भय से उपजती है। माँ और बच्चे धीमे धीमे उससे काफी डरने लग थे पर जब हर सुबह वह कुछ दूर बारी बारी से सबके कमरों में जा जाकर और दुम हिलाकर अपनी पारिवारिक सदस्यता का भावभीना सबूत दे जाता था तो उनकी कमजोरी को यही बहुत होता। है तो बफादार," हर सुबह, उसे देखकर वे कहते और हर सुबह पिछले दिन का पूरा मनोमालिय न जाने

कहाँ गायब हो जाता। प्यार में हार मानने में आदमी से बढ़कर नाकामयाब कोई प्राणी नहीं। होने होते घर का कोई सदस्य ऐसा न बचा, जिस पर वह खोसियाया न हो। इसके सदा तीन-चार बँधे-बँधाय कारण होते थे—एक तो उसकी नींद में खलल पड़ना, दूसरा, उसके हड्डी चबाते वक्त किसी का पास खड़े रहना और तीसरा, अगर वह सोफे या तख्त पर अपना कोना छाँटकर बैठा हो तो उस वहाँ से उठाने की किसी तरह की अधिकृत अनधिकृत चप्टा। तब एक छन में उसका रक्त बदल जाता था—रूप भी। और वह अपने पूवज भेड़िया से हूबहू मिलने लगता था। उसके जबड़े ऊपर सिमटकर तीसरे मासखोरे दाँत बाहर आ जाते, आँखों के पपोटे चढ़ने से आँखें सफेद और पुनलियाँ स्याह हो जाती और गले से एक भीषण धुरधुराहट निकलनी बच्चे तो उसके क्रोध के लक्षणों में इतने वाकिफ हो चले थे कि उसका ऊपरी हाठ सिमटत ही तितर-बितर हो जाते, पर अगर कोई नया बाहरी व्यक्ति घर में जाया हो तो जोखिम खड़ा हो जाता था। शम आती थी, शा अलग। कई लोग जो साफ सीधी बात कह डालने के अपने ठेठ हिन्दास्तानी गुण में अभिभूत थे, साफ सीधे ढग से कह जाते कि ऐसे कुत्ते का बच्चों के घर में पलना ठीक नहीं। कमाल है, पढ़े लिखे होकर भी—पर इसी 'भी' पर दो साल माड़ी अटकी रही। मा उसकी गुराहट सुनकर भी हर राज नियमित समय पर रातब देती रही, पिता अखबार पढ़नेवाली अपनी नम धूपभरी कुर्सी का मोह त्यागकर बगल की चौकी पर बैठ तक्लीफ-वह कोणा में अखबार और चाय की प्याली हाँ हाँ करता सँभालता रहा, और बच्चे हर मित्र को लालू के खौरहेपन से आगाह कर, चोरी छिपे अपने हिस्से का डिस्कुट और मक्खन लगी डबलरोटी उसे खिलाते रहे। लालू अब एक भरपूर कहावर कुत्ता था। स्पष्ट और निखालिस रूप से देसी और एक सैथोल ढग में गठे कड़ियल बदन का ऐंठभरा मालिक। प्रायः गलिया में वह देसी कुतियों के साथ घूमना दीसता था और कभी दो दो तीन-तीन रात तक गायब भी रहता, पर घर के बिगड़ैल नशाखोर निखटटू सदस्य की तरह तब भी उसका आवादाना घर के कोने में पड़ा ही रहता। नाराजगी, डर और प्यार के गड़मगड़पने में।

तभी एक दिन लालू ने माँ को बाट गायी और सब कुछ जनाटे सहित गया। समय आ गया था कि चीजाँ के गड़मड़पन को दुनियादारों से साफ़ कर निश्चित किया जाता कि घर में लालू का क्या क्या है? हुआ मह कि बरसात के दिन थे और माँ अकसर लालू के बान और गदन के पाम 'टिक्' चिपके देखती थी। छोट छोटे गटमल से कीड़े जो कि खून पीकर अगूर से गोल और नरम होकर पड़ जाते और एक फुड़िया पीछे छोड़ जाते। हिम्मत कर उस दिन माँ एक टूटी प्याली में मिट्टी का तल लेकर बैठी और हाथ से चुन चुनकर उन्हें निवासती प्याल में डालने लगी। छह-सात तब तो मामला ठीक रहा और माँ जानवरों की देखभाल और घर की सफाई से अपने को जोड़कर कोई गर्वभरी बात कहने ही जा रही थी कि तभी लालू खोलियाकर उठ पड़ा हुआ और माँ के हाथ में बाटकर चारपाई के नीचे घुस गया। घाय इतना गहरा नहीं था, जितना कि घटना की जाकस्मिक ज़रूरत का पक्का। थोड़ी दूर माँ बैठी रह गयी, फिर दवा की तलाश होने लगी और हाथ धोया जान लगा। इस सारी हड़बड़ी के बीच पूरे दिन भर लालू उस्ताद गायब रहे और दूसरे दिन सुबह सिर झुकाये घर के भीतर आये और चुपचाप जाकर कोने में पहुँच रहे। माँ उसके पास से गुजरी तो पूछ आदतन दो तीन बार सलूट में हिली और भूरी पुतलिया में मंत्रीभाव सा कुछ कापा पर दिलो में होन बैठ गया था। बस किसी बच्चे को या पड़ोसी को क्या तो?

उस दानदार पशुचिकित्सालय का डॉक्टर झुलसायी भवावाला एक मोटा-सा शख्स था। उसने पूरा धीरा मुनकर जंगलिया से भीतर को इशारा किया 'मेरी राम मे आप इसे खतम करवा दें तो ठीक रहेगा। स्वभाव तो अब इसका दवा दारू, विटामिन किसी से बदलेगा नहीं। बच्चा का क्या है।' बढ़िया नस्ल का दूसरा ला दीजिए दो दिन में पूछेंगे भी नहीं कि कहाँ गया। देगी कुत्ता ही तो है। किसी को बाटा तो नहीं इधर इसने?' माँ को स्वीकार करना पडा। हाथ में अभी भी पट्टी बँधी थी। छुपाती तो कस? डाक्टर का चेहरा और भी गम्भीर हुआ तब तो हफ्ता भर इस दखना पड़ेगा। कही 'रेबीज न हो, वर्ना आपको चीदह सुइयाँ लेनी हागी। हफ्ते-भर बाद आप फोन करके पूछ लें, अगर रेबीज हुआ तो गतिया खुद-ब-खुद

मर चुका होगा, अगर नहीं हुआ तो फिर आपकी मर्जी, बैसे पन्द्रह रुपये में इजेक्शन आता है—एकदम बिना तकलीफ के जानवर को मारता है—आप फोन पर बता दें तो बस ।’ उन्होंने हाथ से खलास का इशारा किया, बीस रुपये इन आठ दिना उसके अस्पताल में रहने-खाने के हान । आपका फान नहीं आया तो हफ्ते भर बाद हम खुद इम ख म करा देंगे । ठीक ?”

पतीस रुपये भरकर वे जब घर लौटे तो एक दूसरे से आँखें चुरा रह थे । हफ्ते भर के बाद माँ न पिता से पूछा, ‘क्या फोन किया था उन्हें ?’ ‘हा, किया था’, पिता ने कहा, ‘बह जिंदा है, जाहिर है कि उस रबीज’ नहीं है ।’

“तब ?”

“तब ? तब ? तब क्या,” पिता ने झत्साकर कहा । माँ न सोलह साल की ग्राहस्थिक समयदारी स मुह सी लिया और नल के नीचे साग घोन लगी, घुपचाप । उसने अपनी पराजय स्वीकार कर यू भूक सहमति दे दी तो पिता अपनी इच्छा से माँ की सहमति आ जुड़ने की शम से बीरला गया था । अब वे मुहलत भी नहीं माग सकते थे ।

मरना तो उसे था ही भरवा दिया, सो ठीक किया । बाल्कनी की औरता म से किसी एक ने कहा, “अरे कुत्ता हो तो कुत्ते की आकत में रहे । कुत्ता भी आदमी जैसा तुनकमिजाज हो जाये तो हम लोग पालतू बनाकर बिस रखेंगे है कि नहीं ?”



## प्रतिशोध

मधुमूदन बाबू ने उस्तरा मेज पर रखा और ठोड़ी पर फिटकरी मलने लग। उस्तरा की धार तेज थी और जरा सा हाथ बूकते ही खून उतर आता। उस जमाने की चीजा की बात ही और थी, उन्होंने उस्तरा को सभालकर धोते हुए सोचा। उस्तरा की सड़की हुई बेंट पर लिखा था, 'मेड इन जमनी'। पीढ़िया तब इस्तेमाल हो सकनवाली चीजें तो बस वही बनती थी। उन्होंने गमछे पर हौले हौले थपकाकर उस्तरा सुखाया और बड़े एह तियात में उसे बंद करके पुराने डिब्बे में रख दिया। अब हारमोनियम की ही बात लो—पहले कसी बढिया तावे की रीडस जोर क्या पढ़ें होते थे और क्या लाजबाब ट्यूनिंग। पढ़ें पर उंगली छुई नहीं कि सुर गा उठता था—ताउन्न बाल बरोबर भी श्रुतिया में घट बढ नहीं। अब तो जो बनाते हैं, सो सतरंग पिलास्टिक के चमकीले पढ़ें, ज्या वह साज नहीं, पतुरिया की घघरिया हो। भीतर से रीडगोद में चिपका भर देंगे एक बरसात हुई नहीं कि साज खलास। वही हाल तानपूरी का है। पहले असल हाथीदांत की नक्काशी होती थी, और जबारी ऐसी कि तार छिड़ते ही गूँज से पता चल कि जैसे लगातार मेघ गरज रहे हैं—अब उस पर भी गोद से वही सस्ती पिलास्टिक की पट्टी चिपका देंगे। बेढील तूबे अनघड खूंटियाँ। साज को हाथ लगाने को मन नहीं करता। उन्होंने फिटकरी की डली उस नन्ही बटुवी में रखी, जिसमें पिछले पच्चीस सालों से फिटकरी रखी जा रही थी।

और हजामत का सामान सँभालने उठ गये ।

दलिदूर छा गया है, दलिदूर जमाने में । चीजों पर ही नहीं, बल्कि आदमी की आत्मा पर भी । कहाँ वह हाड तोड़कर रियाज करना, सूरज उगने से पहले उठकर ढाई-ढाई घण्टे एक-एक सुर को पकड़कर चिपके रहना । मेरुखण्ड के बँहजारों पलट कण्ठस्थ करना । कौन करना चाहता है अब ? अब तो चारोंक अलकार रट लिये, दसोंक अप्रचलित रागा के नाम सीस लिये—कुछेक सोंगों की मनचीती रगमच की अदाएँ सीख ली और साल भर की तालीम के बूते पर बन बैठे घरानेदार गुणी संगीतज्ञ । साले घरबारी का हड्डा के सुर लगायेंगे एस कि लगे जौनपुरी गा रहे हैं । और सुननेवाले लोग हैं कि मारे उत्साह के तालियों का दौर नहीं खतम हो रहा है । सब पूछो तो यही मूरख श्रोता इनका दिमाग चढ़ा देते हैं । कोई समारोह हुआ नहीं कि ठठ के ठठ सुनने को चल आते हैं, ज्यों लगर खुला हो । अर, कोई पूछे तुम जानते क्या हो ? 'अल्प विद्या प्रलयकरी', उनके उस्ताद कहते थे । उन्होंने कान की लबें छूकर उस्ताद को याद किया । अहा हा, क्या नूर था चेहरे पे, क्या रआब था अपने फन का, सिद्धि कहो जी सिद्धि । श्री का रिपभ लगाते थे, तो सुर छाती के ऐत बीचोबीच खुभ जाता था । खटाक ! ज्या शब्दवेधी बाण हो । सात साल एक कनफडिया बाबा से गुफा में बैठकर प्राणायाम सीखे थे उस्तादजी, श्वास प्रक्रिया मिश्रमन । तीन-तीन सप्ताहों की रफ्त में गला यों फिरता, ज्यों मछली पानी में तर रही हो । तोड़ी गाते सुनो तो दिल मक्खन की माफिक पिघल जाता था । अजी, हिचकियाँ बँध जाती थी हिचकियाँ । सामने श्री सारस्वत संगीत महा विद्यालय से महा कवश नक्की सुर उभरा— पीया की नज्जरिया । इमन की टाँग ताड रहे हैं साले । न शुद्ध सुर, न शुद्ध उच्चारण । कला की हत्या है, हत्या । उन्होंने घाट से लिडकी बंद की और झोला लेकर धीमे धीमे सीढियाँ उतरने लग ।

इधर सघिवात जोडा में धीरे धीरे व्यापने लगा था, ओर दीवार का सहारा लेकर ही उनमें उतरा जाता था । फश पर बैठकर रियाज किय बरसा बीत गये थे । बड़ी लम्बी दौड है जिन्दगानी भी । बस अकेले दौडते चले जाओ, जब तक ऊपर से पुकार न आ जाये । माँ-बाप तो वे सो बचपन

मे साथ छोड़ गये, कैसे घोर दारिद्र्य मे मामा ने घर रहकर ज़ेमे-तसे एण्टेस करके ट्रासपोट कम्पनी की नौकरी पायी। सामने मुह चाय खड़ा भविष्य, और सहारा एक नहीं। पर जब एक रोज उस्तादजी का माना जो एक महफिल मे सुना तो लगा कि हा, इही सुरा का दास बना जाय। तो दिन-भर नौकरी, शाम को उस्ताद की सेवा। अजी सत्ताईस साल का यही ढंग रहा, और आखिरी दम तक उन्ही के चरणा पे डले रहे। उस्ताद क्या, घालिद की ही जगह ता थे। उनकी आत्मा मे जो यह सुरा का रस था मो उही का भरा हुआ था। “अवे मदसूदन, वे कहत थे, ‘सील ले गधे की घोलाद। हम गये तो ये फन भी गया। हुआ भी सच म यही। इधर उस्ताद गये, उधर उनकी पत्निया भी अपने अपने बच्चे लेकर इधर उधर चली गयी। रह गये बस व, और पेट काटकर जतन से जोड़े ये नायाब साज—जमनी की रीड़वाला हारमोनियम, भीरज का बना अफ्रीकी तब-वाला तम्बूरा, पुणे के तबसो की जोड़ी। अब तो खोल बढा तानपूरा महीनो कोने मे टिका रहता है। श्रद्धा से वे हर गुरु पूर्णिमा को उसकी पूरी सफाई-भर जरूर करते है। तबल की जोड़ी भी बंद पड़ी है। हारमोनियम अलबत्ता मेज पर रखकर व कभी कभी बजा लेते हैं पर अब अगुलिया मे वो रपत नहीं रही। वैसे पेटी अभी भी चकाचक है। वो तो उस जमाने की चीज थी जब बाजे की एयरफिटिंग जमभर की हो जाती थी। आजकल की तरह थोड़े ही कि स्टिकिंग प्लास्टर चिपका चिपकाकर लोहार की भाथी की तरह घोंकते रही, जस सामने ने स्कूल म होता है। एक बार कुछ छोकर मरस्वती पूजा के उत्सव के लिए उनका बाजा मांगने आय थे। उन्होंने गुराँवर भगा दिया। साज कोई शादी की गैसबती है जो मुहल्से भर मे घूमता फिरे है ? फिर अपनी चीज-वस्त बाटना बूटना उह कतई नहीं सुहाता। न किसी से कभी मागा न ही दिया। अपना हिसाब साफ रखा। उन्होंने इतमीनान स खँसारकर धूका। उह अपनी कृपणता पर कोई ग्लानि न थी।

सड़क पर पहुँचकर मधुसूदनजी ने घोती कुछ ऊपर उकसाई और पटरी-पटरी चलने लगे। सड़क पर गंद पानी का परनाला बह रहा था। नीचे की मजिल मे एक परिवार रहता है। गंदगी मे जबाब नहीं। किराये का मवाल न होता तो बच का इस बिल्डिंग को छाड़ चुके होते। पर अब उनका छाड़त

ही किराया छह गुना कर दिया जायेगा, यही खयाल उन्हें छोड़ने नहीं देता । बीस साल से यही रहते आय है और अब तो आखिरी बंद करके भी पूरे घर में फिर सकते हैं । सा यथासम्भव इन्द्रिया को भीतर मूढ़े पड़े रहत हैं । शुरू-शुरू में कुछ लोगो ने मुहल्लाना दोस्ती गाठने की चेष्टाएँ की कुछ बच्चे पूजा होली वगैरा का चंदा मागने अचकते हुए चढ़ आये या कि भेजे गये । पर उनकी एक पाख से पतयड के पत्ते जैसे छितरा भी गये । अब वे एक बेहद भुनास और नकचड़े बूटे के रूप में मशहूर हैं । न कोई उनसे मतलब रखता है न वे किसी से । नहीं वे खुश हैं कोई तकलीफ नहीं उन्हें ।

अपनी पतली सतर देह को सँभाले मधुसूदन बाबू दाहिनी तरफ मुड़े । सामने बाजार था । दुकानदार स फोकट में जगत-व्यापार के चर्चे करना, लौकिया में नाखून खोवना या बेवजह मटर छीलकर खाना और बाजार भावा को लेकर दूसरे ग्राहक से बतकही करना उनका स्वभाव नहीं । न ही कभी जो सामान न खरीदना हो, उसे देखने दाखने में वे व्यर्थ समय गँवाते हैं । अपना बीचें आय, सामान मोलाया और वापस । एक गड्डी मूली, पाव भर लौकी । एक बट्टी चाँदी साबुन और एक पाकिट ईसबगोल की भूसी । इतना कुछ मालाकर उहान बटुवा पाकेट में डाला और भारी झोले को दूसरे हाथ में अदस-बदलकर वे वापस लौट चले । बच्चों का एक गोल मोटरो, ताइक्लिता और टूफा की परवाह न करता, लग्गी लिय किसी पतंग की टाह में डोल रहा था । मधुसूदन बाबू ने आजिजी से पटरी बदली । औरतें और बच्चे न हो तो ससार स्वर्ग बन जाये बस ! दुनिया के खटराग इस स्त्री जाति को लेकर होत हैं । उन्हें अपने उस्तादजी की तीन पत्नियाँ याद आयी—दिन रात की चख चख दजना बच्चे, थीका थाकी, मारामारी और इस सारे नक के बीच बेशबर परितप्त बठे सुर की साधना करते हुए उनसे उस्ताद । ज्यो बीचड के बीच मुशोभित कोमल कमल का एक पत्ता हो । पर अभावो से वे भी कब तक जूझते । अन्तिम समय घुल घुलकर टी बी हो गयी थी । न ठीक दवा दारु, न फल-दूध । उनसे जितना हो सका, किया । पर एक अनार सौ बीमार । अकेले वे गाढ़ी कहाँ तक खेंचत ?

खून की उल्टियाँ करते, एक श्वास में चार चार आवतन की तानें लेनेवाले उस्ताद के फेफड़े अन्त समय एक एक साँस की तरसकर रह गये। उन्होंने तभी से तय कर लिया था कि वे परिवार बगरा नहीं बसायेंगे। सरकारी ट्रांसपोर्ट कम्पनी की गुमास्तागिरी अपने गुजारे लायक द ही देती थी। कुछ जोड़ा जमाया, कुछ पेंशन। कष्ट्रोल किराये का मनान था। बस आनन्द सहै था। न लड़की की शादी की चिंता, न लड़के की नौकरी की हाय हाय।

झोला रखकर मधुसूदन बाबू ने धीमे धीमे कपड़े बदले, स्टोव सुलगा कर बेतली चढ़ायी और सब्जी काटन लग। नाम की एक टाइम खिचड़ी सब्जी। सुबह रोनी दाल। बस इतन ही में वे तप्त रहते हैं। न अचार, न चटनी। अलवत्ता व्यवस्था और दूध व जहर लेते हैं। रमोई में रसद के सब डिब्बे भी करीने से सगे थे, लेबल समेत। अस्पष्टता से उन्हें सख्त नफरत है। उन्होंने चाय बनायी, और सब्जी का पतीला चढ़ाकर खिचड़ी पर जा बैठे। संगीत महाविद्यालय की क्लासें खत्म हो गयी थी और ठी ठी करती लड़कियाँ का एक हुजूम सड़क पर उतर आया था। मधुसूदन बाबू ने नाक मिकाड़ी, औरतो की बिलावजह ठिलठिलान की आदत, वे सह नहीं सकते। उनकी राय में स्त्री को गम्भीर और मितभाषी होना चाहिए। जो पृछा जाये बस, सो ही बतलाय और अपने काम-स काम। य तो आजकल क चाचले हैं कि लड़कियों को सिर पर चढ़ाकर रखा। और तो और, अब तो ये लोग पतलून भी पहन लें तो माँ बाप राजी। गिव ! शिव ! ! गिव ! ! ! तुलसीदास ने कलिकाल की जो भविष्यवाणी की थी, गलत नहीं था कतई।

लड़कियाँ अब एक छाट के ठेले के पाम खड़ी चहक रही थी। मधुसूदन बाबू उठकर सब्जी में कलछी चलाते लगे। अब पैसे उड़ावेंगी, इसी सब चाहियात जाने पर। अरे, दाल रोटी का सात्विक खाना खाओ और उनकी तरह सत्तावन साल की उमर में भी टिच रहो। पर नहीं। अभी ये सब अण्ट-सण्ट खा खाकर जब तक तीस की होयेंगी तो मेदा ऐसा हो चुकेगा कि चालीस की लगेंगी। और खाओ ताममिक भोजन, और लगाओ किरीम-पोडर ! एक हिस टनटनाहट से उन्होंने सब्जी का पतीला उतारा और

खिचड़ी चढाकर आच धिमा दी। ये हिन हिन घोड़िया सगीत सीखेंगी।  
हूँह ! 'नारी की झई परे अघा होत भुजग।' ठीक कह गय कबीरदास।  
बलिहारी उनके उस्तादजी की, जो इस भाया से उह उबार गय।

साँझ उतरा रही थी। मधुसूदन बाबू ने बत्ती जलाकर दबस्थान में  
पहले दीया जलाया, फिर एक अगरबत्ती, और श्रद्धाभाव से भगवान को  
प्रणाम किया, 'आ भूबुव स्व '

तभी दरवाजा खडका। उह अचरज हुआ। कौन ? उनके यहा तो कोई  
आता जाता नहीं। शायद कोई गुजरता बच्चा भडभडा गया हो निहाज  
हो—पर कोई था। दरवाजा फिर खडका। आजिजी से उहोने चटकनी  
खोली। उनका पतला मुंहना जिस्म कोड़े की-सी तीखी क्रुद्ध जिनासा से  
भरा सतर हुआ और छोटी छोटी आँखें दाका से दारीफे के बीजा-सी चमकने  
लगी। दरवाजे पर एक अघेड आदमी खडा था, 'माफ करगे, श्री मधुसूदन  
धर्मा ?'

"मैं ही हूँ, कहिए ?" उहान अपनी नैमर्गिक ख्वाई में पूछा।

"जी आपसे एक काम था—दरअसल मेरे पास मेरे पिताजी का एक  
हारमोनियम है—यानी काफी पुराना।"

"तो ?" वे अभद्रता से दात कुरेदने लगे।

व्यक्ति कुछ सक्पका गया, "जी उसके कुछ पर्दे जरा फँस रह थे। मैं  
इस घहर में नया हूँ। सामने कॉलेज में पूछने गया था, पर वह बंद हो गया  
है। सुना आप सगीत के जानकार हैं। किसी साज सुधारनेवाले का पता  
शायद आप बता सकें, ऐसा "

"कितने कहा था ?" उहोंने तक्रीबन गुरति हुए अपनी घनी भवें  
सिकोड़ी।

"जी, वही कुछ लोगो ने। दरअसल पुराना जमनी का बना हुआ  
बाजा है जिस तिस के हाथ दना नहीं चाहता। अच्छे साज कितने नाजुक  
होते हैं, आपको तो मालूम होगा।"

'हूँ।' वे कुछ क्षण घूरते रहे। 'अच्छा बलिये, बाजा देख लेता हूँ।

वही पाग म रहत है ? '

जो आपको तबलीफ तो "

पाँच मिनट रुकना होगा ।" दमाई " उस बैठन का इशारा कर, व खूटी म धुरता उतारन लग, ' आपको संगीत का शौन है ? "

' जी, थोडा बहुत । मर पिताजी अच्छे जानवार थ । उही स पाडा कुछ "

किसम तालीम पायो थी ? " उहान विधवा म बलछी बलायी । व्यक्ति ने नाम बताया । उहें अचरज हुआ । इस साले शहर म एम पनवार म तालीम पाया दान्म ? विचही फिर बन जायगी । उहानि पतीली नीचे रखर चप्पला म पर डाले, " बलिए । "

घर सचमुच पास म ही था । रास्ते म ही व्यक्ति ने बताया, उसका नाम दामोदर है । दामोदर पाण्डेय । पिता मय साल नहीं रहे । बस, घर पर एक बूढ़ी अपग माँ थी, और इधर उनकी दख रम की विधवा बहन आ गयी थी जो पहले पास के शहर म पढाती थी । यह स्वय बच म मुलाजिम था ।

घर छोटा, पर चकाचक साफ था । पदों से लेकर गाय-तकिय के लिहाफ तक हर चीज जीण पर धुली हुई और करीने स लगी थी । उहोने चप्पलें दहलीज पर उतार दी और चाँदनी पर बैठ गये । दामोदर भीतर चला गया । भीतर से कुछ दम स्वर उभरे, फिर वह एक पेटी उठाये वापस आया । कुछ कुछ हाँफने हुए उसन पेटी उनके आगे भक्तिभाव स ऐसे रखी जैसे दयप्रतिमा हो । उहानि देखा, पेटी पर शकरपारदार सिलाई का नरम खोल था । वे प्रसन्न हुए । साज का सही रख रखाव, सुर की तमीज से हमेशा जुडा रहता है ऐसा उनके उस्ताद कहत थे । दामोदर ने कवर हटाया । अहाहा, आखें जुडा गयी । साजवाव कारीगरी । रोजबुड का ढाँचा, चमकते आवनूस व हाथीदात के पदें उहोन भाथी खोलकर उँगली रखी, कर्ण, मीठा सच्चा सुर । बाह । " उहान प्रशसा से उँगलियाँ फिरायी ' देहतरोन बाजा है ।

दामोदर के पील चेहर पर मद स्मित उभर आयी । आज तक एयर-फिटिंग नहीं बदली, न ही पदें घिस हैं उहोने सिर हिला हिलाकर दाद

दी, फिर सराबी टटोलने लग 'रेती या रेगमाल होगा आप पे ? और थोड़ा मशीन का तल भी ?' उहान मुलायम सुर में पूछा। उनकी आशा के अनुकूल घर में सब था। निरंतर इस्तेमाल से शीण, पर कायदे से महफूज रखा हुआ। वे हारमोनियम औंच रहे थे, तभी दरवाजे से एक साफ फूल की थाली में दो गिलास चाय के लिए एक युवती नम्रुदार हुई। यह दामोदर की वहन दमयंती थी। दामोदर ने परिचय कराया। एक सात्विक प्रीढ़ता से भरा व्यक्तित्व। मेहूआ लम्बतरा चेहरा। पुराने ढंग के साफ-सुधरे, सलीके से पहने गए कपड़े। परिचय में स्मित न कम, न अधिक। मधुसूदन बाबू बहुत सन्तुष्ट हुए। "खुश रहो।" उहान कई सालों बाद कहा। साज में सास गडबडी न थी। कम इस्तेमाल होने से पर्दे कुछ जकड़ गए थे, उहोने मिनटा में सुधार दिया। उनकी अम्यस्त उँगलियाँ पर्दे पर दौड़ी, "वाह!" दोनों के मुँह से निकला। उसका बाद न जाने जब रात के दस भी बज गये, पता ही न चला। दामोदर के पास उही की तरह घराना की पुरानी यादों, बंदिशा और नामा का अद्भुत सिलसिला था। खुद उसका गला मीठा न था, इससे पिता ने गाना नहीं सिखाया, पर सुना उसने बहुत था। देर तक मधुसूदन बाबू वह और दमयंती संगीत चर्चा करते रहे। मधुसूदन बाबू ने कुछ पुरानी चीजें उह सुनायीं। गला उन्न के भार से थका हुआ था दम भी उगड़ उगड़ जाता, पर अभी भी उनकी बाबत ऐसी कटती थी कि चतुर पारखी भाप सकते थे कि उहान एम वैसे से तालीम नहीं पायी। दामोदर ने बाहवाही की पड़ी लगा दी। दमयंती ने भो ससकोच एक दो बार सिर हिलाया। मधुसूदन बाबू ने भीतर संगीत का जमा हुआ अधाह वारिधि एकाएक पिघलकर मौजें लेने लगा था। वो वो बंदिशें याद आ रही थी, जो उन्हें खुद भी याद नहीं था कि उह याद थी। फन की अद्भुत गहरी समझ दाना भाई-बहिन में थी मानना होगा। दमयंती स्वल्पभाषी थी और बीच बीच में उठकर भीतर जाती रहती। शायद माँ की दखभाल को, पर उसके उठने बैठने और आनेजाने में भी एक सहज सलीका था। लगता नहीं था कि उक्तावर उठी हो। चुपचाप उठनी, फिर वैसे ही आकर तमोज से बैठ जाती।

दस बजे मधुसूदन बाबू जाने की उठे, तो दमयंती ने ससकोच कहा



कि उनकी माँ का आग्रह है, वे खाकर ही जायें। मधुसूदन बाबू जान सका। खाते-खाते भी चर्चा होती रही। खाना सात्विक और सुघराई से परसा गया था। बगल के कमरे में ही माँ का बिछौना लगा था, वे वही से आग्रह करती रही, “अचार दना इहे बेटी, बेरवाला। वल का मुरब्बा भी देना। जरा पुराना बेल है भाई जी, मगज की तर करेगा। आप तो फनकार ठहर।”

बाता, जज्बातो का बफ जो पिघला तो मधुसूदन बाबू का उस घर में आना-जाना प्रायः रोज ही होने लगा। घर ने भी बड़े तपाक से उन्हें एने ग्रहण कर लिया जैसे पुराने बिछुड़े हुए सदस्य हा।

मधुसूदन बाबू के रूखे उजाड़ अतमन के भीतर धीरे धीरे कोमल अँखुए पनपने लगे थे। रात के लेटते तो दर तक काना में विस्मृत बंदिशें घुँने गूँजती रहती। बीच बीच में दमयंती की मृदुमन्द आवाज आती, ‘एक फुलका और दू? दही खट्टा तो नहीं? शकर दू? शिव। शिव।। शिव।।। पर वे जितना ही ध्यान समीत और शिव की तरफ मोड़ना चाहते, मन सालो बाद खूँटे से छूटे जानवर की तरह बगदुट उतनी ही तजी से उसी घर की तरफ भाग भाग निकलता। दमयंती दमयंती! नाम ही जस दमकता हुआ हीरा हो। अदम्य गरिमा से मण्डित, स्वर्गाय धृति से भरपूर। उसके चिबुक का कुछ कुछ हठीला मोड़ उसकी रोटी बेलती पुष्ट बाँहा के नम कोण, झूलते के नम उजास में दमकत उसके कपोल। मधुसूदन बाबू अपने कमरे में अक्सर हारमोनियम पर रात गये ठुमरिया गाते रहते—‘पिया मत जइयो रे अकेली डर लागे।’ उनका हृदय जो एक भिचकर बंद की गयी कुठरिया सा सकुचित और अँधेरे की सुनी बामदार पतों से भरा हुआ था, अचानक खुला-खुला सुहावना और उजैसा हो आया था। उन्होंने साला के बाद दो नयी कमीजें सिलवायी, एक जोड़ी नयी चप्पलें भी मोला ली। नाई से जब उन्होंने कलमें ठीक से बतारने को कहा तो वह कुछ हक्का बक्का-सा देखने लगा। एक बार उन्होंने उसे चबनी ज्यादा देने की सोची भी फिर सोचा, बेकार क्यों रट बिगाडना?

दमयंती की माँ को भी उनका आना खूब अच्छा लगता। पढ़ी पढ़ी वे

उनसे अपने पति के संगीत प्रेम और गुजरे जमाने के चर्चे करती रहती। दामोदर भी तो उन्हीं की तरह अघपगला है संगीत के पीछे वे लाठ से म्हती। पिछले साल ऑफिस में कुछ दोस्तों से संगीत पर चर्चा करते-करते मारने पीटने पर आमादा हो आया था। “क्या करता?” दामोदर खिसिया-कर प्रतिवाद करता, “जिद बाँधे धसे जा रह हैं कि सूहा और सुघराई अलग-अलग चीजें हैं। अब आप ही कहिए, सूहा-सुघराई यानी कमज-कम सुघराई आपने अकेली गायी जाती सुनी है महफिलो में? यानी सचमुच की पुरानी महफिलो में?”

मधुसूदन बाबू ने मुदित हो समथन किया। लौण्डा जहीन दिमाग रखता है, शक नहीं। “अब मधुसूदनजी चार संगीत सभाएँ सुन ली, जरा सुबह-शाम आधा घण्टा रेडियो सुन लिया, तो आजकल सभी शास्त्रज्ञ बन बैठते हैं। न कान में सुर, न गले में रपत, न सबसे पर ठीक बावत बटती है। बस शोर धराबा किया, चंद अलवारों में नाम छपवा लिया और नामी घराने-दार संगीतज्ञ बन गये। सगे अलाँ की फलाँ की शागिर्दी का झूठा प्रचार करने।” मधुसूदन बाबू का मन किया कि उसे गले लगा लें। हू-ब-हू उन्हीं के मन की बातें।

दमयंती का प्रसंग उठने पर बड़ा भाँ की रुलाई छूट जाती। “अभागी है, और क्या? ऐसा देख-सुनकर इसके पिताजी ने क्या किया। घर, शानदान, लडका सब ठीक ठाक था। पर भाग्य का लेख कौन जाने! ठीक छह महीने बाद एकसीडेण्ट में जाता रहा। इकनोता था। साल भर से सदमे से सास-ससुर भी चल असे। और बस इसने स-यास जैसा ले लिया। पहले ही कम बोलती थी, जब से नौकरी शुरू की, बस हाँ हूँ से आगे नहीं। गाय है भाई साहब, मेरी गरीब लडकी, गाय।” वे कहती और फिर रो रोकर अपनी जीण देह को कोसने लगती जिसके ब-घन स बेटा बेटी दोनों पराधीन हो गये हैं। अच्छी-खासी नौकरी उनके खातिर छोड़ आयो पगली। और उन्हें भगवान भगि से भीत भी नहीं देता, बँसी विडम्बना है? वो तो मधुसूदन बाबू आ जाते हैं, तो कुछ देर को चरा रौनक हो जाती है। दोनों बच्चे भी चरा बोल-बतिया लेते हैं, बरना वे तीनो हैं और ये घर की दीवारें। न बोलना, न चालना, जैसे मकबरा हो। क्या, परिवार का मुख ही नहीं

था नसीब मे, वरना इस घर मे कितने प्राणी डोलते । एक उसास लेकर वे तकिये से उठ जाती । तभी दमयंती चुपचाप दलिया या खिचड़ी लाकर उह खिलाने लगती । छोटे बच्चे की तरह बहुत अहतियात से खिलाकर वह उनका मुह धुलाकर कुल्ला कराती, फिर आंचस की छूट से निकालकर इलायची के दाने उनके पोपसे मुह मे भर देती, “अब सो जाओ, बहुत हुआ, फिर बुरा बढ जायेगा ।”

मधुसूदन बाबू को नही लगता था कि बूढ़ा ज्यादा चल पायेंगी । इधर दामोदर ने भी चिंतातुर स्वर मे उह बताया था कि मा की हासत गिरती जा रही है । डाक्टर का कहना है कि बमुश्किल चढ महीने और । मैं तो दमयंती से कह रहा हूँ कि वह अपने पुराने कॉलेज मे नौकरी के लिए फिर एप्लाई कर दे । सोलह सास वहाँ पढाया है, जरूर फिर वे ले लेंगे । यहाँ रहकर क्या करेगी । मैं भी सोचता हूँ, माँ के बाद मैं हरद्वार चला जाऊँ । मेरे एक गुरु वहाँ हैं । आश्रम मे रहन की पूरी व्यवस्था है ।

मधुसूदन बाबू के गले मे जैसे सीस का गोला अटक गया हो । छाती में हवा घुटने लगी, बमुश्किल बोल पाये—

“तो ?”

“वह कहती है, एव तो स्कूल की कमेटी मे बेहद सकीण विचारावाले दकियानुसी लोग हैं । खासकर महिला लेक्चरारी को लेकर । इससे उसे वहा बढी घुटन होती है ।”

‘ फिर ?’

“फिर पता नही तीन चार साल से छूटा सब फिर से शुरू हो पाय या नही ?”

‘ यह तो है ।’

“क्या है ? पागल है यह तो ।” दामोदर झुझलाया । ‘इस गहर मे तो कोई स्कोप है नही । वहाँ जरा पहचान के लोग हैं । पुराने सम्बन्ध हैं, और अब मुझे भी इस पारिवारिक दाय से मुक्ति चाहिए । माँ नही होनी तो मैं तो बच का चला गया होता । स्वामीजी सब स बुला रहे हैं ।

‘ उसे भवेला नही लगगा ?’

“अवेलेपन का क्या है ?” दामोदर तत्सी से हँसता है, तो उसके चेहरे

से हू ब-हू दमयन्ती का चेहरा झंकता है, "यहाँ कोई कम अकेली है वह ?"

'तौर में ?' मधुसूदन बाबू पूछना चाहते थे, पर फिर जाने को उठ खड़े हुए। उनके भीतर मानो एक प्रचण्ड वात्याचक्र घूम रहा था। 'ता दमयन्ती चली जायगी ?' तक्रिये पर सिर टिकाकर उठोने सोचा। सुबह की रागिनी सा वरुण कोमल दमयन्ती का लम्बूतरा चेहरा उनके आगे तैर आया। इतने बड़े शहर में उसके लिए कहीं साथ नहीं, कि इच्छा के विरुद्ध वह इतनी दूर फिर से क्या वे जुबान खोलकर कभी वह पायेंगे कि वह चाहे तो शिव ! शिव ! उठोने वेहद क्रोध से करघट बदल ली। दिमाग तो मही है उनका ? उम्र में कम से कम बीस साल का अंतर होगा। अगर उसके पिता ह्रात पर दमयन्ती थी कि उनके क्यासा से चुपचाप टिककर खड़ी थी जैसे जवसर दीवानखाने के दरवाजे से वह टिककर खड़ी रहती है उनके उठकर चौके में आने के इतजार में। निर्निमेष उन दोनों को ताकती हुई। कमकर बांधी गयी बेणी, उनके आगे चलती उसके ध मुष्ट नितम्ब, सुडौल जघाएँ शिव ! शिव ! मधुसूदन बाबू उठकर देर तक ठण्डे पानी से मुह धोते रहे फिर देर तक तानपूरे पर रगड़कर पालिश किया किये।

और फिर महीने भर बाद दामोदर की माँ भी चल ही बसी। वे भी घाट गये थे। रोज ही जाते थे वैसे भी। दोना भाई बहनो में अपना दुख भीतर ही चिरा लिया था। हाहाकार करने की था भी क्या ! वे तीनों दर तक चुपचाप बैठे रहते। फिर एकाब हफ्ते बाद दामोदर ने उन्हें बताया कि बड़ी अच्छी खबर है। दमयन्ती का आज उसकी एक पुरानी सहकर्मी सहेली ने लिखा है कि उसके पुराने डिपाटमेंट में एक जगह खाली है, यदि वह आना चाहे तो

मधुसूदन बाबू घर की लौट रहे थे तो पैर जमे मन मन भर के हो गये थे। रात देर गये तक वे सोचते रहे फिर एक निष्कप पर पहुँच ही गये। अगले रोज सुबह बक जाकर पहले उन्होंने कुछ रुपया निकाला, फिर पचासेक रुपया किराया भरकर हफ्ते भर का चौक की एक दुकान से, जहाँ उन्हें कोई न जानता था, हिंदी का एक टाइपराइटर किराये पर ले आये। छेड़ सौ रुपये उसने सिवयोरिटी के रख लिये थे, वाद की लौटा देगा। खलो ठीक है। रास्ते से उहाने कागज और काचन मोताया और एक

लिफाफा भी। 'टप-टप टप' अनभ्यस्त जकड़ी उँगलियों को टाइप करने में समय लग रहा था, पर वाक्य उनके भीतर अपने आप बने जा रहे थे। मधुसूदन बाबू दमयंती के कॉलेज के चेयरमैन को टाइपराइटर पर गुमनाम खत लिख रहे थे। एक निहायत कड़वा, अस्वील खत, जिसमें दमयंती के साथ उनका अपना नाम जोड़कर हर सम्भव तरीके की भद्दी परिकल्पनाएँ गूँथी गयी थी और अन्त में यह सबिनय निवेदन किया गया था कि ऐसी पतिता, कुलटा, दुश्चरित्रा स्त्री को, जो अपने बाप की उम्र के बुजुर्ग के साथ छिनाली करती है, बतई उनके जैसे सम्भ्रान्त कॉलेज में पुनः स्थान न दिया जाये। आगे आप स्वयं समझदार हैं—आपका एक हितचिंतक।

पत्र पूरा कर मधुसूदन बाबू ने लिफाफे में डाला, और पता टाइप किया, फिर मनोयोग से अपने घर की सफाई की, और रिक्शा लेकर सालो बाद रेलवे स्टेशन को चल दिये। वहाँ जाकर उन्होंने पहले इधर-उधर देखा। नहीं, कोई परिचित चेहरा न था। चेहरा परे किये उन्होंने अगले स्टेशन का टिकट कटाया और एक अलबार की ओट किये तब तक बैठे रहे जब तक वह स्टेशन आ न गया। स्टेशन पर पहुँचकर उन्होंने खत स्टेशन के बाहर ही पोस्ट किया और वापसी का टिकट कटाकर तुरन्त लौट आये। इसके बाद वे महीनो बाद मन्दिर गये और देर तक भक्ति भाव से वहाँ बैठा किये।

## एक नीच टूँ जेडी

दरवाजा खोला। भीतर एक चिट्ठी पड़ी हुई थी। अतर्देशीय। बाहर तक महीन मकड़िया इबारतो से भरा हुआ। लिखाई माँ की ही हो सकती थी! माँ के पत्र का आखिरी हिस्सा हमेशा चिट्ठी से उमगकर बाहर उस जगह तक उफना आता है जहाँ लिखा होता है—छपमा पत्र के भीतर कुछ न डालें।

मैंने एक बिराट क्षणों से किताबें मेज पर फेंकी और सह-से कटे पेड की तरह तखत पर गिर पड़ी। नाटकीयता में कोई तस्व जरूर है जो तकलीफों को काटता है। चाहे कुछ देर को ही हो। एक तो यह वकीलों और प्रोफेसरो का थका मुसा शहर, तिस पर धूल भरे फरवरी मार्च के महीने, जब युनि-वर्सिटी में चिन्ता और डर सूखी पत्तियों से मँडराते फिरते हैं। हाये इम्तहान! इम्तहाऽऽन! मैंने कवामदी सुरा में गाया। खिडकी के बाहर गुलमोहर और सेमल सारी धूल और खुशकी के बावजूद रंग से ऐसे फटे पड़ रहे थे कि सारे डर के बावजूद एक नजर भी उधर बहक जाये तो पैर कही जाते हैं, मन कही। मैंने तुक मिलाया, हाये नौजवान! नौजवान! नौजवाऽऽन! मेरा मूड कुछ अच्छा हो गया। मैंने टाँगें ऊपर दीवार पर टिका दी और अपने मुँदर खुरदुरे टखने हिलाते हुए अपनी तुकबंदी का मंत्रपाठ करते-करते चिट्ठी खोल ली। माँ की चिरपरिचित हाँफती भटकती शैली में खबरें थी। इधर की, उधर की, और फिर धूम-फिरकर बात वही आ टिकी थी—आशा है

छुट्टियो मे घर आने के लिए रिजर्वेशन करा लिया होगा। आशा है खाना वगैरह ठीक से खा रही होगी। आशा है पढाई का ध्यान इस बार तो— आशा है। आशा है। आशा है। चिट्ठी का गोला बनाकर मैं उछाल दिया और पास पड़ा शीशा उठा लिया। आशा है। जब मूढ खराब हो तो अपना चेहरा आईने मे सहृदयता से देखने मे बड़ा सबूत मिलता है। सब मे। तुम्हारे अपने चेहरे मे कुछ जरूर होता है जो दुनिया की हिकारत के बावजूद तुम्ह हमेशा अपने प्रति बेतरह प्रेम और क्षमाशीलता से भरा दीखता है और वही तुम्ह अपने प्रति हर बार नये सिरे से आस्वस्त करता है—बावजूद इसके कि—बावजूद इसके कि—

टग टग टग। खाने की घण्टी बज रही है। हरी कासई आवाज। जहाँ घन घण्टे को निरन्तर पीटता है वहाँ कई छोटे-छोटे काले गढे पड गये हैं, मुहासो की तरह। आओ। आओ। आओ। युनिवर्सिटी की इमारत के ऐन तले बैठे हुए भी जो घबराहट इस दम महसूस नहीं हो रही है वह घर जाते ही आ चिपटेगी। बावजूद इसके कि वहाँ सब कुछ इतना परिचित, फुसती और आराम करने के आग्रहो से भरा हुआ होगा। कुछ जरूर होता है घर मे जिसके कारण हर बात जो यहाँ कतई निजी और सीमित लगती है, बहा जाते ही सावजनिक बनकर घुएँ सी पसरने लग जाती है, चारा ओर से घेरते हुए। क्या है? क्या है? कैसे है? अपनी शानदार कुर्बानियो के नश्वर से निरन्तर तुम्हारी चमड़ी छील छीलकर माँ बाप मानो भीतर तक पैठ जाना चाहते हैं, तुम्ह फिर से अपने भीतर समो लेने को आतुर, कि तुम्हारा कुछ भी उनसे छुपान रह जाये। आशा है। आशा है। आशा है। और तो और, मनविचकित्सको की तरह वे तुम्हारे सपनो को भी अपनी मिलिकमत बना लेना चाहते हैं।

मैंने मुराही से एक गिलास पानी भर लिया और उसे हवा मे लहराया। एक आम सप्तार के सारे विगत आशावादियो के नाम। मैंने गाने की भी कोशिश की पर मेरी आवाज मुझी तक नहीं पहुँची। प्यारे भाइयो और बहनो, सारी चेष्टाओ के बावजूद मेरी ताकत एक खतरनाक ढग से छीज रही है। गिलास का पानी खिडकी के बाहर कुछ देर अफ्रीका के नक्शे के आकार मे पड़ा रहा, फिर धीमे धीमे सूख गया। खाने की दूसरी घण्टी बज रही है।

सामने टंगा बँलेण्डर हवा में घीमे घीमे डोले आ रहा है। जहाँ वह रोज़ रगड़ खाता है वहाँ उससे पीछे दीवार पर एक अद्वच द्राकार निशान सा बन गया है। जैसे छिली हुई कुहनी हो। मुझे अपनी माँ की याद आयी। शुरू-शुरू में जब हमारे टकराव शुरू हुए थे तो सबसे पहले माँ ही थी जो कि बेतरह हिल गयी थी। बाबू से भी ज्यादा। जाने कब घीमे घीमे हल्के मजाको की तुर्गी जाती रही और प्रत्यारोपों की गम्भीरता बढ़ने के साथ-साथ प्रतिवादों की कड़वाहट भी बढ़ती चली गयी थी। 'खरबूजे को देखकर खरबूजा रग पकड़ता है,' बाबू कहते थे। छोटा और मैं मुहावरो के वे खरबूजे थे जा खुद छुरी पर गिरें या छुरी उन पर, कटते वे खुद ही हैं।

कालिंदी मीना-स्वप्ना वासन्ती, एक झुण्ड-का झुण्ड बेवजह ठहाके लगाता डायनिंग हॉल को जा रहा है। वे वे हुर्राफा चिक्के घड़े, वे काली कामलियाँ, वे औषड बीतराग दिव्यात्माएँ हैं जिनकी भूख पर भावनाओं का कभी असर नहीं होता। कड़वी-से कड़वी राजनीतिक शठप या इन्तहानों में खराब से-खराब पर्चे के बाद भी वे हँस हँसकर भूख भरे बौर निगल सकती हैं वही पर धीनी डलवान और दास को दुबारा गम कराकर उस पर मिच की बुकनी डाली जाने की इच्छा ध्यवत कर सकती हैं। गुलदाज, हँसमुख, निर्विकार भंडे। माँ-बाप की प्यारी, सासो की दुलारी, बच्चा की महतारी।

भडास निकालकर मेरा जी फिर खुश हो गया था। मैंने लेटे-लेटे गुन-गुनाता घालू कर दिया।

"बड़ी खुश लग रही हो, बात क्या है?" विशावर दरवाजे से टिककर खड़ी थी। मौत और विशावर हमेशा बिना दरवाजा खटखटाये आते हैं, ऐसा मशहूर था। मुझे आश्चर्य नहीं हुआ। फूलदार छापे का हाउसमोट अपने विपुल उरोजा पर लपेटे, सिर पर रंगीन तौलिए का स्तूप उठाये प्रदत्त-चिह्न-सी वह खड़ी रही—"कोई खास खबर?" उसने आँख मारी। विशावर उन बेवजह बदनाम सडकियों में से है जो बात-बेबात सबको आर्ख मारकर उनसे भद्दे राज ठगलवाने के सवेत देती हैं। वैसे दिल की वह साफ है और मुझे उससे कोई गिला नहीं। सिवा इससे कि वह अपनी निजी आदतों में बेहद मदी है। उसके कमरे की खिड़की पर अचार और जैम की सैकड़ों बोतलें बगैर ढक्कन के सदा पड़ी रहती हैं, फफूद से भरी हुई। उसने



टूफत्रश को देखकर लगता है कि उससे धायद जूते की पालिश की गयी होगी, उसकी ब्रेजियर का फीता कभी ग्लाउज से झाँके तो तुम्हें उबकाई

मैंने अपने खयाला को तमीज से सपेटकर भीतर रस दिया और कुहनी के बल उठेंग गयी—“कुछ नहीं, यूँ ही।” पर वह गयी नहीं, वही खड़ी अपनी बिलोटे सी आँखों से कमरे का जायजा लेती रही। मैं अपने-आपसे घात बदन लगी कि अब यह कुछ-न-कुछ माँगेगी जरूर। वह होस्टल में उधार न लौटानेवाली भंगती के रूप में मशहूर है।

“यह चप्पल नयी है?” उसने बेमुरीज्वती से मेरी नयी चप्पल में अपने पै खुर घसा दिये जिन पर कालिंदी से माँगी नैसपालिश लगी थी।

‘हाँ।’ मैंने अपना स्वर भरसक सपाट रखा।

‘भ्रष्टी है।’ उसने अपनी उँगलियाँ कुछ अंदर-बाहर सपलपायी, फिर चप्पल ठेल दी—‘हम पिक्चर जा रहे हैं, चलोगी?’ वह कपे की कोर से दाँत कुरदने लगी—“तुम तो छुट्टिया में घर जा रही हो ना?”

‘हाँ।’

“तो चलो फिर, वहाँ तो यह फिल्म अगले साल आयेगी।”

देखूंगी।’ मैंने सुर में भरपूर उकताहट साने की असफल चेष्टा की, ‘कौन-सी है?’

उमने सस्पेंस जीर भारघाड़ से भरपूर एक अग्रेजी पिक्चर का नाम लिया जिसके शहर में काफी चर्चे थे।

“टिकट?”

‘मिल जायेंगे।’ उसने कंधे उचकाये, उसके पिता पुलिस की कोई बड़ी तोप थे, और कभी ऊँचे ओहदे पर इस शहर में गद्दीनशीन रह चुके थे अतः उनकी एक सूझ सी सुती यहाँ अभी भी बोलती थी—खास नहीं, पर सिनेमाघरों, परचून की बड़ी दुकानों वगैरह में। शहर के सबसे बड़िया सिनेमा हाल का बूढ़ा बंदमिजाज गेटकीपर उसे बेबी बहता था और देरी से पहुँचने पर भी वगैरह झुझलाये टाच धमकाता हमे सीटों तक पहुँचा जाता था।

‘वारह तब बता देना साढ़े-चारह जायेंगे।’ वह भुड गयी। मैं उसे जाते देखती रही। मेरा मन हो रहा था कि उससे पुकारकर कहूँ—प्यारी

विश्वर, कुछ देर यही बैठ जाओ, कुछ देर बात करो, कुछ भी, कही की भी, मुझे इस अवेलाहट से, मुझे अपने-आपसे बचा लो मेरी दोस्त ! मुझे लगा कि मेरे मुह से पेपरबैक उप-यास बोल रहे हैं, और मेरी हँसी छूट गयी ! मैंने उठकर चप्पलें पहनी, फिर उतार दी और सेट गयी ! पक्कर देखने में नहीं जाऊँगी, यह मुझे मालूम था, उन्हें भी ! बेकार की तकरार क्यों ?

छत के कोने पर मकड़ी कुर्ती से जाला बुन रही थी—अपनी असह्य पतली टाँगों से झधर-उधर भागती, कातती, चिपकाती ! मैं नाखून खवाने लगी ! पिछले साल पच्चे बादज़ूद मेरे मा-बाप के मुगासते के, कतई सामान्य हुए थे, खामकर बल्ड हिस्ट्री का तो एकदम गोडकर रख आयी थी ! दरअसल बल्ड हिस्ट्री का सबसेना मुझे फूटी आखों नहीं सुहाता था ! अपने जमाने का अच्छा विद्यार्थी रहा होगा पर एक चपरकनाती भावुकता में वह प्राध्यापकी में आ घुसा था ! उसके साथ के और जहीन विद्यार्थी आज सरकारी प्रशासक के लिबास में ऊँचे कल पुर्जे बिठा रहे थे, बड़ी प्राइवेट सेक्टरवाली फर्मों की वातानुकूलित गाडियाँ दौड़ाते हुवाना की सिगारें पी रहे थे, और वह नपोलियन की लडाइयाँ के मुसयि लेखे जोखे काल्म मचापे गजा और बदमिजाज होता चला जा रहा था ! मुससे वह पहले ही दिन से कुछ उखड गया था ! या शायद मैं ही उससे ! दरअसल अब आपसे क्या छुपाना, वह मुझे अपने 'माता पिता के अभिन मित्र 'क' चाचा की याद दिलाता था ! वही पतली तोते की चाच-सी नाक और चौकोर जबडा, वही नकसी अलमस्ती से उचक-कर चलने की आदत और नक्की आवाज ! रेडियो में जो बच्चों की फुलवाडी-नुमा प्रोग्राम आते हैं ना उनमें एक शरस जो बड़े भैया बहलाता है और हर अहम मौके पर बच्चों को टरकाकर तोतली आवाज में खुद ही मजाक सुना कर उन्हें सविस्तार समझाने बैठ जाता है, कुछ कुछ वैसे ही 'क' चाचा को समझ लीजिए ! 'आखिर हम लोग हैं पुरानी पीढी के,' उन्होंने यह वाक्य कहा नहीं, कि हम लोगो के काँट खडे हो जाते थे ! अम्मा के वे बेहद चहेते थे, क्योंकि उनके पारिवारिक नैतिक उपारुमाना की वे बेचूक दाद देते रहते

थे। फिर खाने के मामले में। उनकी जुवान में सुनते थे कि बहुत रस था, यानी जिसे अंग्रेजी में कहते हैं 'डिसत्रिमिनेशन'। वे तुरत भाप लेते हैं कि कब चाय नौकरो ने बनायी है और कब अम्मा ने। 'घर था रस तो बस गृहिणी के ही हाथ में होता है', वे कहते और तुरत प्रस्ताव करते कि अम्मा मुझे भी अपनी यह सिद्ध बलाएँ सिखा दें वरना सिर्फ बर्नाड सा और टी यस ईलियट पढ़कर गहस्थी नहीं बनती—सड़किया से। समझी? बाबा के भी ये परम चहते थे क्याकि राजनीति और समाज के नैतिक अवमूल्यन पर वे बखूबी उनकी बातचीत की गाड़ी टेल ले जा सकते थे, बीच-बीच में गाड़ीवाद की चेंपी देते हुए। इस त्रिकोणी माटकीयता में हर बार हम भाई-बहना की उपस्थिति सापेक्ष हो जाती है। कतई।

"अब आप लोग मुझे चाहे रुढ़िवादी कहें"—अम्मा के शुरू होत ही वे सहकर बढ़ावा देते, "भाभी, आप तो शब्दों का गलत इस्तेमाल करती हैं, आप कहती हैं रुढ़िवादी, पर मैं कहूँगा भद्र, शालीन। अब भद्रता कोई बदलनेवाली चीज तो है नहीं बेसिक्ली, कि कोई कहे कि हम नयी पीढ़ी के हैं इसलिए आपके अदब-कायदे हमारे लिए बेमानी हैं। क्यों भाई, यंग रिबेल्स?" उनकी मुह खोले एडिनायडल जिज्ञासा जाक की तरह हमारी उपस्थिति से घिपककर फूलने लगती, "साबित कीजिए कि मैंने गलत कहा है।" वे बाबा को आल मारकर हिस्र हँसी हँसते, "ऊरा इधर हम लोग के साथ तो बठो हम लोग भी जरा सुनें कि क्या नाम यंग पीढ़ी आजकल क्या राय रखती है? सुना है बड़ी बहसें करने लगे हो बखुरदार!" मैं मैया का भिचता जबड़ा देखती और मेरी नाभि में कुछ बुलबुलाने लगता। यूँ हमारी पूरी कोशिश यही रहती थी कि चाचा या मासियो के आते ही हम तीनों घर के गृह्यतम कोना में कही बिता जायें, पर हमें पूरी तोर से मालूम था कि तब भी नेपथ्य से घरवालों की ऊँची आवाजें जीवन और त्याग, ससार और समाज जैसे ऊँचे विषयों पर अपने सहज छिछलेपन के साथ बुलकारती रहेंगी। अपने ही माँ-बाप हडनाने को क्या कम थे कि ऊपर से ये रिस्तेदार भी !

ऊँची वाढो ऊँच और अबमण्य चाकरी से भरे हमारे शहर के विराट उजड़े बगीचों और भूरे फाटववासे उन पुराने बगलों में से एक में मालिनी

मौसी रहती थी। उनके घर के भीतर नीम-अँघरे में घुसते ही घुघलाये रोगन, घीमें घीमें घुलती लकड़ी और धूल की गंध नयुनों में ऐसी भर जाती थी कि पूरे वक्त लगता रहता जैसे किसी तलधर में घुसे बैठे हो। स्वयं वे तीखा बोलनेवाली और निरन्तर एक कड़वा दुख भीतर पीसनेवाली सतत शकालु जीव थी। हमारी सरल, धमभीरु और हँसमुख मा से कतई भिन्न। उनके बोलने, उनके झुल्लाने और उनकी घीमें घीमें रुक रुककर बतनेवाली भगिमाओं में एक पूरी स्त्री जाति के प्रबलित रक्त का इतिहास था, जिसमें दिन ब दिन उनकी पूरी ताकत निचुड़ती जाती थी—अपने विगत सुनहले रूप और लकड़क डिग्रियों के बावजूद या शायद उही के कारण। हम सबको उनके उस घूमकेतु से उज्ज्वल विगत की घटनाएँ कमजकम सौ बार तो सुनायी ही गयी होगी जो कि एक कृपण कठोर परिवार की चाकरी में इस छोटे शहर में घुल घुलकर नष्ट हो गया था। कैसे पन्द्रह मिनट तक कबो-केशन में उनके नाम पर तालिया बजती रही थी, कैसे उनके परिचितों का कहना था कि उनकी-सी रूपवती पर अब क्या? जबसे हमने होश सँभाला, वे एक बसकर बंद हुए दरवाजे की तरह थीं जो एक चिड़चिड़ायी घरमराहट के साथ सिर्फ उन्हीं को भीतर आने देता था जो उनका अपना रक्त मास हा। हमारी नैकनीयत और सतत उत्साही भाँ उनमें से एक थी, पर उनके घर आकर मनहूसियत और पछतावे की एक परछाई उन पर भी आ पड़ती थी। “कैसी थी, और कैसी हो गयी बेचारी।” वे कहती और दुखी हो जाती। एक कड़ियस सास के तले मालिनी मौसी के जीवन की जो शुरू-आत बिगड़ी तो सास के मरने के बाद भी सँभली नहीं। या शायद सास तो एक बहाना भर थी। त्रासदी की रानी मालिनी मौसी का रहस्यमय रूप से द्रैजिक स्त्रीत्व ही एक ऐसी शिंसा थी, जिसके तले उनका व्यक्तित्व कतई भिचकर रह गया था। उनके घर जाने पर, या जब-जब वे हमारे घर आतीं, हम उन्हें अपनी तीखी आवाज में शिकायतें ही करते सुनते थे। अपने स्त्रीत्व से उत्कट धुणा और आत्म-दया के बीच उनकी हर बात सदा झूलती रहती। मदपने की गंध भर, चाहे वह तम्बाकू का धुआँ हो या बदलील मजाब या ऊँचे ठहाके, उन्हें एक उत्कट उत्तेजना से भर जाते थे और वे घंटा अपनी धुणा में पुरानी पड़ी-सी टिकटिकाती रहती। बंटो की खर्चीली बरुवी से

लेकर, पति की छोटे शहर की स्थायी नौकरी और पुराने नौकरो की छिछोरे चतुराई तक, शिकायतें उनके हर यात्रा-लाभ की टेक होती। हमारी माँ के पुराने अल्बमों में वे बेहद पीली, कमनीय और रूपवती दिखायी पड़ती थी, पर अब तक वह रूप एक विराट मोटापे में घँस चुका था। हाँ हाँ, हमारी सतत प्रफुलित माँ भी तो ऐसी धान-धान न थी, पर उसके फैलाव में एक चैन भरा वास्तव्यमय गद्गदपना था जिससे दूधभरी गोदें बनती हैं। मालिनी मौसी का मोटापा एक ऐसा सट्टा खमीरी उफान था जो चीजों के निरंतर ठँककर भीतर बँद रहने से आ उठता है। तुश, अस्वास्थ्यकर और पोला। अनेकानेक रहस्यमय स्त्री रोग हमेशा उनकी विराट कमर तोड़ते और सिर को दब से फटता हुआ बनाये रखते थे। और उनके आलिंगनों से सदा दवाइयों और अकेलेपन की उत्कट गंध आती थी। पर इस सबके बावजूद इस सारी त्रासदी में कुछ था जो बेहद कारुणिक और मानवीय भी था। मौसी का दुख उस जीव का शब्दहीन दुख था जो प्रकृति के अन्याय और स्थितियों के घटियापने के विरुद्ध अकेलेपन और शून्यता के छोरो पर बिना हथियार डाले जूझ रहा है। अपनी तरह से। सगातार। और उनकी हार में वही हम सब भी शामिल थे।

छोटी मौसी का वजूद उनकी तुलना में कतई सहज और सरल था। जिस जगह मालिनी मौसी ने स्थितियों से टकराकर जूझने की कठवी चुनौती कमकर उठा ली थी, उसी बिंदु पर मालिनी मौसी ने हथियार डालकर आज्ञा बालिका-बधू बनी रहने की स्थिति प्रेमपूर्वक ग्रहण कर ली थी। उनका रीझना खीझना, बोलना—सभी बाल्योचित और अस्थायी था। अपने छोटे-से पुत्र से वे हमेशा अंग्रेजी में बहसँ करती, रोती या रीझती रहती थी। उनकी भोली आकांक्षाओं की परिधि विदेशी सामान से लकड़क-गहस्थी जोड़ पाने से लेकर अपने नहे बेटे की आला अफसर बना पाने तक ही फैली हुई थी। इसी से उनके दुख भी छोटे छोटे और अस्थायी थे—महरी वान आना, अचार में फफूंद पड़ना या बच्चे का इम्तहान में कम नम्बर पा जाना। सतत भीड़ और सतत धुक्धुकार, वे हमारी माँ के रुमानी जीवन के उस शून्य को बखूबी भरती थी जो उनके अपने बच्चों के दूर छिटक जाने से उपजा था। माँ के भग्न हुए जाते स्वप्नों की दीवार को

उनका बचकाना सहारा भी बहुत था। या शायद अपने स्वाध से हम ही यह विश्वास करना चाहते थे।

मुह कड़वा हो गया था। मैंने उत्सुककर चप्पलो में पैर धुसेढे और पुसी के कमरे की चल दी। पुसी, माने पुष्पिन्दर। मस्ती और मसखरी से भरपूर सरदारनी, पुसी प्रेवाल। वह कुछ-कुछ नाक से बोलती थी और उसकी बचकानी अंग्रेजी में हिंदुस्तानी अंग्रेजी स्कूलोवाला एक खास कटाव था। उसकी पँचहीन दिमागी दुनिया हरी घास का वह अनहद विस्तार थी जहाँ दूर-दूर तक सपाटपने का गुदगुदा नमदिल सन्नाटा होता है। हर सामान्य चीज में वह असामान्य रुचि लेती थी। खाने में खूब मिच और गम मसाले-वाली चाट, या फिर धी में तरसासन, गाने में लता मंगेशकर, किताबा में रोमास और जासूसी के चर्चे, और एकदरा में अमिताभ बच्चन। इन सब पर वह सौ जान स भरती थी। यूँ उसके कढ़ावर जिस्म और कड़कदार आवाज के परिप्रेक्ष्य में इससे हल्के भावनात्मक आवेग की कल्पना हाँ ही नहीं सकती थी।

"ओये पुसी।" मैंने नक्की स्वर में झुलकारा और सीढियों के छोर से आधा घड लटका दिया। कोई जवाब नहीं। मैंने अगल बगल ताका। पुसी के कमरे के बगल में ही सुरुचि अस्थाना का पका-बुसा कमरा था, जहाँ हर चीज भालकिन की ही तरह दुबली, व्यवस्थित और शहीदाना ढंग से भुर्मायी हुई थी।

"बाहर गयी है," सुरुचि की पतली बंदी आवाज आयी। सुरुचि की सुरुचिपूर्णता में कोई चीज थी जो रहस्यमय रूप से मेरे भीतर अश्लीलता को जन्म देती जाती थी। मेरे भद्दे व्यथा भाव प्रदर्शन से सुरुचि के सुरुचिपूर्ण नयनों का अलंकृत आभिजात्य कुछ सिकुड़ा, फिर वह अपनी घूसर भलमन-साहत से ईषत् मुसकरायी— "आज कुछ देर यही बैठ लो।"

बैठना पड़ा, सुरुचि हमारी शालिनी मौसी की तरह सारे भारत की ओसत मध्यवर्गीय माताओं का कमसिन मिनियेचर है। शिक्षित मर्यादापूर्ण, सतत झुंकगुजार। वह हर साल सामान्य सेकण्ड डिवीजन में पास होती है और

सेवर, पति की छोटे शहर की स्थायी नौकरी —  
 चतुराई तब, शिकारमें उनके हर बाता ।  
 पुराने अल्बमा में वे बेहद पीली, कमनीय  
 पर अब तब वह रूप एक विराट मोटापे ।  
 सतत प्रफुल्लित माँ भी तो ऐसी धान-पा  
 चैन भरा वात्सल्यमय मदगदपना था जि  
 मालिनी मोसी का मोटापा एक ऐसा गट्टा ।  
 निरंतर डेढ़बर भीतर बंद रहने से आ उठ  
 पोता । अनेकानेक रहस्यमय स्त्री रोग हुन—  
 और मिर को दद से फटता हुआ बनाये रंग ।  
 सदा दवाइयो और अकेलेपन की उत्कट ग  
 आधजूद इन सारी त्रामदी में कुछ था जो बर—  
 था । मोमी का हुन उस जीव का सन्दर्भ दु  
 और स्थितियों के घटियापन के विरुद्ध अके  
 बिना हथियार डाले जूझ रहा है । अपनी तर  
 हार में वहीं हम सब भी शामिल थे ।

छोटी मोमी का बजूद उसकी तुलना में व  
 जिन जगह मालिनी मोमी ने स्थितियों से टकरा  
 बगकर टूटा सी थी उसी बिंदु पर मालिनी  
 आज्ञा-बालिका-बधू बनी रहने की स्थिति में  
 उनका रीझना गीझना, बोला—सभी बा—  
 अन छोटे-ग पुतल से हमारा असेजी में बरग  
 रानी था । उसी मोती आकांक्षा की परि  
 मरुमी आद जाने में तब अन मदे केटे को ।  
 ही नैनी हुई थी । मीम उनके हुन भी छोट  
 ममी का न आता अपार में पर्यून पहना दा  
 गहर पा जाना । गगन भीड़ और गगनकुण्डुला  
 जैसन व उन दृश्य को बगुनी मानी थी जो उ  
 छिन्न जाने में उनका था । माँ के मन हुआ जो

(पेट पकड़कर मतली की मुद्रा, जीभ निकालकर पुतलियाँ घुमाना), खाते ही हमारा गैस बाय जाग जाता है, आऽह !”

निमलाजी की भूरी अनक्षिप पुतलियों में हँसी सा कुछ कँपता है, “देखो सुधा, मसखरी छोड़ो, जो पका है सो खाना होगा। समझी ? मैं देख रही हूँ कि जब जब इम्तहाना का वक़्त शुरू होता है, तब तब तुम गड़बड़ करती हो। बस, दिन भर सटर सटर धूमना जोर शीकना। क्या शक्ल बन गयी है। बसो, उठो।” वे चली जाती है, जोसस की ताई, दधीचि की हड्डी, गांधी की चेली। मालूम है कि अब मैं जाऊँगी ही। एक हम ही साले है, घर से बाहर तक सब बड़ों की हुकुमबर्दारी करने का। मैं घिसटती हुई डायनिंग हॉल के दरवाजे पर खड़ी होती हूँ। गर्मी और खाने की गंध से भरे बानगीत के रेल चहुँदिस उमड़े पड़ रहे हैं। ज्यादातर लोग तमयता से खारहे हैं, लगातार धोलते हुए। हर मेज पर दाल और दही के धब्बे हैं। रोटियाँ घीमड़ हैं, दाल ठण्डी। “गरम कर दें।” पग्सनेवाली नेवनीयती से पूछती है। ‘नहीं।’ मैं कहती हूँ। मुझे मालूम है कि एक कटोरी दाल गम करने वह रसोई जायेगी और अय महाराजिना की डाँट खाती हुई फूटपने से राख भरी कटोरी में तनिक गरम दाल आधे घण्टे बाद ले आयेगी। लौकी के टुकड़े भुट्ठी बराबर हैं, मिच मसराबार। आखिरी निवाला लेकर मैं भाली सरका देती हूँ। पर तब भी यह खाना उतना खराब मालूम नहीं देता, घर का खाना चाहे लाख बेहतर हो, पर जहाँ माँ हमारी कुत्तियाँ के चारों ओर व्यय फटफटाते हुए हम खाना खिलाना बालू करती हैं सारा स्वाद काफूर हो जाता है। कई बार तो लगता है कि हमारे-जैसे परिवार में खाना ही दिमागी उसपना ता अबूक घरेलू इलाज बनकर रह गया है। बेहरा क्या है ? जरूर विटामिन ‘बी’ की कमी है तो थोड़ा दही और लो, एक रोटि ज़रा ज्यादा घी के साथ। रात नींद ठीक से नहीं आयी ? खाना भारी हो गया होगा, आज हल्का बनवा देंगे। पढ़ने का जो नहीं करता ? ज़रा अध्यनप्राण ले लेना। कोई नहीं पूछता जो कि पूछना चाहिए, और जो नहीं पूछना चाहिए उसके बारे में हजार बताहें।

हॉस्टल का सॉन पागुन की अपरिहार्य मोरमी मासलता से गदगद हैं। फूल ही फूल। लाख हटाने पर भी चारों चिपक-सी जाती हैं। धूल और



उसकी आल्मारी हमेशा करीने से लगी रहती है, उसके कपड़े हमेशा इस्तरी-दार और उसके बाल हमेशा तेल से चमकदार होते हैं। वह धार्मिक भी है। जहाँ उसकी सजिल्द किताबों की लाइन खतम होती है, वहाँ सदा एक शेर या हंस पर सवार देवी की फोटू या पालयीदार प्रतिमा स्थापित रहते हैं—चरणा पर एक अदद फूल या अमरबत्ती के भग्न ठूठ समेत, आशीर्वाचन, अभयहस्त। दरअसल यह लड़की इतनी पाक और पारदर्शी है कि उसको देखकर मुझे हमेशा उसके परे उसका भविष्य दीखने लगता है और यकीन मानें वह भी उतना ही सपाट और स्थिर है जितना कि उसका वर्तमान। मैं आज से दस साल बाद किसी दूर के कस्बे या शहर में अपने इंजीनियर/डाक्टर/अफसर पति के साथ बसी उसकी उस सपाट गृहस्थी की कल्पना करती हूँ जहाँ झक् झक् साफ उज्जाम के बीच उसके अहज को फरनीचर, ब्रासो स चमकायी पीतल की मूर्तियाँ और इकेबाना के मृण्मय पात्रों के परे एक कोने में नहे दीपक से प्रकाशमान उसके पुस्तकालय की दबता बैठे ऊँचे हाँगे। मैं मधुर स्वर में उसकी उनीची जिज्ञासाएँ टालती, टोहती कुछ देर बाद लौट आती हूँ। 'पैकिंग करनी है न! अच्छा! कुछ चाहिए तो नहीं हमारा शहर से? सोच लेना! वाय्य!' स्टेज से नेपथ्य की रुखसती मेकअप सुधारना। उम्दा पाट अदा करती है लड़की। थक्यू! थक्यू! थक्यू!

'खाना खाया?' निमलाजी सीढियाँ पर चढ़कर पूछती हैं। वहाँ स्टल की सबसे बड़ुग रिसच स्कॉलर हैं। वे विधवा हैं। कम उम्र विधवा। पर यहाँ उम्र में वे बाकी सबसे काफी बड़ी हैं—शान, गम्भीर अन्तर्मुखी। उनका यह ज्ञानमुलपना मालिनी मौसी की तरह एक बिड़बिड़ाहटभरी अमहिष्णुता पर नहीं टिका है। उनमें एक ठहराव है जो बाधता है। हालाँकि उनके चेहरा या शरीर में ऐसी कोई पागल कर देनेवाली बात नहीं। पर वे अपनी जगह हैं और अगर 'इज्जत' शब्द को इलास्टिक की तरह फलाकर हमारे परिवार में उमर में उन तमाम चुगुदा को लपेटकर न रख लिया होता तो शायद मैं कहती कि मैं उनकी इज्जत करती हूँ।

"खाना खाया?" वे फिर पूछती हैं। उनकी स्थिर जिज्ञासा के आगे मेरे जैसे शातिर सिलाही भी टालमटोल नहीं कर पाते। "नहीं," मैं कहती हूँ। फिर जचानक भुज पर नाटक हावी हो जाना है, 'आज तो खी बनी है

(पेट पकड़कर मतली की मुद्रा, जीभ निकालकर पुतलिया घुमाना), खाने ही हमारा गैस बाय जाग जाता है आऽहूँ !”

निमलाजी की भूरी अनक्षिप पुतलियों में हँसी-सा कुछ कंपता है “देखो सुधा, मसखरी छोड़ो, जो पका है सो खाना होगा। समझी ? मैं देख रही हूँ कि जब जब इम्तहाना का वक्त शुरू होता है तब-तब तुम गड़बड़ करती हो। वस, दिन भर लटर-मटर घूमना और झीकना। क्या शबन बन गयी है। चलो, उठो !” वे चली जाती हैं, जोसस की ताई, दधीचि की हड्डी, गांधी की चेली। मालूम है कि अब मैं जाऊँगी ही। एक हम ही साले हैं, घर से बाहर तक सब बड़ों की हुकुमबखशारी करने का। मैं घिसटती हुई डायनिंग हॉल के दरवाजे पर खड़ी होती हूँ। गर्मी और खाने की गंध से भरे आननीत के रैले चहुँदिश उमड़े पड़ रहे हैं। ज्यादातर लोग समयता से स्या रह हैं लगातार बोलते हुए। हर मेज पर दाल और दही के धब्बे हैं। रोटियाँ चीमड़ हैं, दाल ठण्डी। “गरम कर दें !” परसनेवाली नेकनीयती स पूछती है। “नहीं !” मैं कहती हूँ। मुझे मालूम है कि एक बटोरी दाल गम करन वह रसोई जायेगी और अन्य महाराजिनो की डाँट खाती हुई फूँटफूटने से रात-भरी बटोरी में तनिक गरम दाल जाधे घण्टे बाद ल आयेगी। लौकी के टुकड़े मुट्ठी बराबर हैं, मिच म सराबोर। आखिरी निवाला लेकर मैं भाली सरका देती हूँ। पर तब भी यह खाना उतना खराब मालूम नहीं देता, घर का खाना चाहे लाख बेहतर हो, पर जहाँ माँ हमारी कुत्तियों के चारों ओर ध्वष फटफटाते हुए हम खाना खिलाना खालू करती हैं सारा स्वाद काफूर हो जाता है। कई बार तो लगता है कि हमारे-जैसे परिवारों में खाना ही दिमागी उसपना का अबूक घरलू इलाज बनकर रह गया है। बेहरा थका है ? जरूर विटामिन बी' की कमी है, लो थोड़ा दही और लो, एक राटी ज़रा ज्यादा घी के साथ। रात नींद ठाँक से नहीं आयी ? खाना भारी हो गया होगा, आज हल्का बनवा देंगे। पढ़ने का जी नहीं करता ? ज़रा ज़बनप्रास ले लेना। कोई नहीं पूछना जो कि पूछना चाहिए, और जो नहीं पूछना चाहिए उसने बारे में हजार सलाहे।

हॉस्टल का सॉन फागुन की अपरिहाय मौनमी मासलता से गदगद हैं। फूल ही फूल। नाख हटाने पर भी आँखें चिपक-सी जाती हैं। धून और

खुशकी से बेलून-सा फूला घूस का चंदोवा ऊपर गुम्भ तना है। और नीचे लहलह फूलों की ब्यारियाँ। पीछे डायनिंग-हॉल में खाने-पीने का मध्यवर्गीय उत्सव जोर शोर से निबटाया जा रहा है। सालन गम बरवाया जा रहा है, कमरों से अचार और घी की घर से लायी छलाछल बटोरियाँ आ रही हैं, भंडराते कुत्तों की चपातियाँ फेंकी जा रही हैं, अचार की फाड़ियाँ चूसी जा रही हैं, बढते बजन पर शोक और सहानुभूति व्यक्त हो रहे हैं। घास, पत्थर, खाना, और कीचड़-सा चुहचुहाता प्यार। हाय रे बिना आसमान की दुनिया! कुछ साला तुफ नहीं जिंदगानी में, सुक है ही किसमें ?

“क्या सोचा, चलोगी ?”

किशवर तमीज से कपड़े पहने धूप में खड़ी अपने घने केश सुझा रही है।

“कहाँ ?” क्षण भर को मैं सन्देह नहीं समझती। मेरी आँखों में धूप की चिलचिल है, और फूलों के तीखे रंग दूध की तरह उफना उफनाकर मेरे गालों पर टपक रहे हैं।

“यार, पक्कर, और कहाँ !” वह भेद-भरे ढंग से सुर नीचा करती है, “या कोई और प्रोग्राम था ?” उसकी भद्दी जिज्ञासा का ठण्डा छौटा मेरा उफान बिठाता है।

“नहीं, आज नहीं।”

“आज नहीं तो फिर नहीं, समझ लीजिए जानेमन, कल तो फिर घर ” वह गुनगुनाती हुईं मुड़ जाती है। यूँ उसे मुझसे हामी की आशा होगी भी नहीं। मैं उन घुट घुटकर राजदराना दोस्ती करनेवाली भली सड़-कियो में स हूँ भी नहीं जिनसे उसकी पटती है, और जो हर साल हॉस्टल से घर जाते वक़्त ऐसे वात्सल्यपूर्ण आसू रोककर बिदा होती हैं जैसे डोली में बैठ रही हो। मेरे भीतर उन्हें देख देखकर धायद कहीं कुछ सस्त हुआ जाता है, जोस गुठली का-सा बड़ा एक आकार जो भावुक चपसतता के इस विराट सावजनिक सोस्ते में सोखे जाने से बेतरफ़ कतराता है।

“अरे हाँ,” किशवर पसटती है तुम्हारी नयीवाली चप्पलें मैं पहने ले जा रही हूँ, तुमको तो कहीं नहीं जाना है न ?”

मैंने फिर माँ की चिट्ठी उठा ली। बाहर लिखा वाक्य पढ़ती दफा पढ़ना ही भूल गयी थी— मुना चाचा स एक बार जरूर मिल लेना। उनकी तबीयत, मुना, इधर फिर खराब थी। कहना, माँ ने याद किया है।”

हूँह। याद किया है। याद किया है। मैं विकरात मुद्रा बनायी। दुनिया भर के अहसानों के टोकने-डालियाँ घर घर पहुँचाने की मैं ही हूँ। घूप में पिटी नक्कल बनाये दुनिया भर के यहाँ जा बैठो और सजीदा चेहरा बनाये हुए उन्हें गम्भीर आवाज में बताते मुना कि कैसे इस महीने के अंत में जब मंगल शुक्र की गोद में जा बैठेगा, उनका उदर विकार खत्म होगा और कैसे जब उसके अगले महीने चंद्रमा राहु के पेट में घुस आयेगा तो उन्हें कफ-पित्त विकार सताने लगेंगे।

तभी धाड़! जैसे पिन्मो में होता है, दरवाजा खुला। अचानक जैसे नेपथ्य से इंगित मिला हो। यह पुसी थी। दरवाजा उसने लात मारकर खोला था क्योंकि हाथ खाती नहीं थे, फिर भडाभडा उसने कई पैकेट मेरी तरफ उछाल दिये, मेरी हृदय दहलानेवाली चीसों पर कान न धरते हुए।

“भोम खोसी देख क्या-क्या उठा लाये हम लोग।” फिर हम लोग उसकी खरीददारी देखने में व्यस्त हो गये। पुसी उन सदाबहार लोगो में से है जिनके लिए जिंदगी में दो ही रंग हैं—या तो सफेद और या काला। और दोनों के बारे में उसकी राय दोटूक होती है। लिबलिबाहुट का नाम नहीं। चाहे विषय उसका बॉयफ्रेंड हो या ग्लाउज की सिलाई उसकी बातचीत एक ही लुधामिजाज ढंग से दोनों की बलिया तुरंत टटोल डालती थी। आज वह अपनी खरीदी एक नयी चप्पल पर लहालोट थी। पहनकर, उँगलियाँ सिबोडकर, टखने घुमा फिराकर वह अपने पैरों पर बेतरह रीखी जा रही थी। उसके बॉयफ्रेंड ने कभी उसके पैरों को लेकर कुछ तारीफभरे वाक्य कह डाले थे। सबसे वह अपने पैरों की हिफाजत अपने कुंआरेपन की तरह अटूट भक्ति भाव से किया करती थी। आत्मसिप्त लोग अपनी चरम मुग्धता के क्षण में कैसे साफ और पारदर्शी हो जाते हैं, सोते हुए बच्चों की तरह। जभी मुझे लम्बे बाला पर नघी करती अघेड औरतें, कचे खेलते बच्चे और पनबाड़ी की दुकान में शीशा दखकर सिगरेट सुतगाते पुरुष हमेशा अपनी एकाग्र स्थिरता से खींचते हैं।

पुसी की गाड़ी आज ही रात जाती थी। मजे की बात ता यह थी कि उसका बॉयफ्रेंड भी उसी गाड़ी से जा रहा था।

ट्रेन उसके शहर भी जाती है कि नहीं?" विशवर कंधे से दांत छोटती दरवाजे से टिककर खड़ी थी। पुसी ठहाका मारकर हँस पड़ी, "आगरे से दूसरा कनेक्शन ले लेगा। कुछ ही घण्टे का फरक तो है।"

घर ले जा न उसे," विशवर हँसन लगी।

पापा से कहना—पापा, देखो आपके वास्तु क्या सीगात लायी हूँ। आपके जगल म मगल कर देगा।"

पुसी के पिता का तराई के किसी हिस्से में एक विराट फाम था। अँगरेजों का वाक्य उधार लें ता ये लाग पैस में लोटत थे, पर पुसी की बातों में लगता था कि शहरी अँगरेजियत से असंग-यसंग उनकी दुनिया अन्तत एक वनमानुसी रूप से जिस्मानी और मदों की थी। आय दिन उसके पिता या चाचा किसी-न किसी नौकर या कर्मचारी का बंबात धुन डालते थे या उनकी बीवियों पर हाथ डाल दते थे। तराई के निपट अकेले में सारी आबादी से बटे छटे साल के छ महीन बनैले जानवरा और पहाड़ी मजदूरों के बीच काटने के उनके पास दो ही बेचूक इलाज थे। अँग्रेजी शराब और देसी औरत। पुसी की माँ जब-जब मदों पर 'फितूर' सवार होता तो फाम से दूर शहर के बँगले में शिपट कर जपजी साहिब का अखण्ड पाठ, गलीचों की सफाई-सुफाई बगरा कुछ करवा लेती। इधर 'फितूर' फाम से विदा होता, उधर वे वापस पहुँच जाती। "औरत हमारे घर में जूती तो है, पर जरा पालिश-पूलिशवाली।" पुसी ठहाका मारकर हँस पड़ती। सबको मालूम था कि अन्तत उसके बॉयफ्रेंड से उसकी शादी नहीं होगी क्योंकि वह जात का बनिमा और औकात का थोड़ा कम था। पर पुसी को जाहिर ही इस बात को लेकर कोई भीतर विस्म के दुख नहीं थे। उसने किसी अपने घर के ही से आदिम ख्यालातवाले मरद की तिल्लेदार जूनी बनकर चटखने की भवितव्यता भरो में स्वीकार कर ली थी, और इस वक्त वह हँस हँसकर हमें बता रही थी कि कस हर फितूर के उतरने के बाद उसके पापा उसकी मम्मा के लिए नये गहने गढात नये कपड़े बनवात मम्मा की समझदारी पर पानी-पानी हुए जाते हैं। मजाल है कि उन लोगों की

रखें घर की ध्याहताआ के तनिक भी मुह लग जायें। पुसी का चेहरा विह्वल दामत्य के रुमान मे मेरी माँ की तरह चमक उठठा था और मैं अचानक अपन भीतर उनके तुरत मेरे कमरे से निकल जाने की धनपोर कामना का घुमहत पाया।

पुसी के जान के बाद कमरे मे पसीने और मिश्रचयन डियार के सेण्ट ('यूयाक वाले पूफा ! यूयाक वाले पूफा !') की घुशबू भटकी भटकी-सी आती रही। बाद दरवाजे की फाँक के नीचे धून की-सी गाड़ी माच की हवा भीतर आने को छटपटाती रही थी। भटके हुए कुत्ते की तरह दरवाजा कुरेदती हुई। क्या है जा हम हरदम अपने भीतर टटालते रहते हैं पर जिसे शक नह। पकड़ पात, सिफ उसकी आहट भर सुन पाते हैं। दुःख ? दिल ? दिमाग ? दद ? दुम ? दान ! मरी फेंकी चप्पल उस बेहद सम्बी टाँगवाली मक्की को न लगकर कुछ नीचे लगी और लदद स औंधी हो लुढ़क गयी। मक्की पुर्नी से ऊपर चढ़न लगी जहाँ वह नया जाल बातेगी। घत तेरी की।

अच्छा, इस सत्रकी शुग्मात कब हुई होगी ? यानि कि सच मे सोचो तो।

"आ गया," बाबू की आवाज।

"आ गया ?" अम्मा, नाजुक जमुहाई लेकर रुमानी बिताब तिपाई पर रखती है।

भैया। भय। भूष। भुशुस। छोटे और मेरा शतरज थम गया है। रसोई म कोई कम्बलन कुछ गिराता है, शन !

'कुछ खाओगे, या कही " माँ के मुर मे एक-बटा चार शहीदाना-पन, एक-बटा चार बराग्य, एक-बटा दो गूढ अभियोम।

"मे कोई तमीज है ?" बाबू का तनिक तीखा मुर। तिलमिलाहट। तीर। तेजी।

"सारे लोग तुम्हे वघाई देने आये और आप दिन भर घर स लापता ! यानि कि घर कोई-कोई क्या कहते है तुम्हारे लिए हो-हो-होदल है ? ' छोटा हँसन जा रहा है। मैं झूरता से चिकोटी देती हूँ।

'देरी हो गयी।' भैया कुर्सी म घँसकर भोलेपन से रिसाला उठा लेते

हैं। याहवावावा। मैं बताया न कि हम साग एन बेहद नाटकीय परिवार हैं। हर अदा बेचूँ।

‘कुछ ता घा सेने तुम्हारी ही पसन्द’ “माँ उठनी है।

‘बहू ता दिया कि नही।’

आग्नय दृष्टियाँ भूख प्राय का विनिमय। माता पिता का नपस्य म प्रस्मान। टिक् टिक् टिक् घड़ी की तरह टिक्टिराता ठर, नाभि के गीचा घीच।

टिक् टिक् टिक्, प्यारे दशमो—

‘तुम्हारे पास एक अतर्दशीय होगा?’ सुरचि बिल्ली-बदमा म न जान बर दरवाजे के पास आ खड़ी हुई थी। मैं उठनबर उठ बैठी। बाकई की पवराहट म (बसम से ला)। पर फिर नाटकीयता हाथी हा जानी है, सीना पकड़े मैं झुकती हूँ।

‘बदसन चरात हो बूढ़ मनई का? मान सेव मुदा हारट फेल हुई जात, तो?’

अतर्दशीय नेबर सुरचि हँसती हुई चली जाती है। मैं चप्पल घसीटती हुई दपनर की ओर चल देती हूँ, रजिस्टर म दस्तखत करने। मुना चाचा के ही घर म पैठा जाय। जरा चिमगोइयाँ ही कर लें कि इम्तहाना से पहले इडताल का नक्षत्र-योग बनता है कि नहीं? वर्ना टायनबी को अगले हफ्ते इधू करायें। पिछले साल भी जब मकर म शुक्र या शनि जैसा काई खुड-पेंची ग्रह आ घुसा था ता यूनिवर्सिटी म साठीचाज हो गया था।

‘बकीलो के घर से बकालत टपकती है। भया ने एकबार कहा था। और ‘जाहिली के घर से जहालत।’ यह छोटके था, और हम लोग देर तक लोट-लोटपर हँसते रहे थे। मुना चाचा बाबू के किसी दूर अगम्य रिश्ते स भाई लगते थे और हॉस्टल रजिस्टर मे मेरे अभिभावक के रूप म दर्ज थे। यू उनका एक पुस्तनी मकान और कुछ दुकाने हमारे शहर मे भी पडती थी जिनकी दीवानी फौजदारी के सिलसिले मे य हमारे घर प्राय आ टपाते थे। उनके आते ही से बस चुरत हमारा घर भगु महाराज की पणकुटी मे तन्नील हो जाता। चाय की प्यालियाँ लफालप लपकने लगती। अखबारो के पन्ने खुल खुल जाते। राजनीति और भविष्यवाणिया का

चहचहाता मीना-बाजार। रोशनी। चहलपहल। चुहलें। चिमगाइयाँ। बाहर  
बठपरा म बंधे कुत्ते गुरति रहत, अंधेरे में चौखियाये धूयन उठाये हुए।

कीन है ? कीन है ? कीन है ?—

एक नक्षत्र उगता है, एक नक्षत्र डूबता है। फिर फिर उसी धुरी पर  
घूमता है मेरा प्रायद्वीप।

सुबह शाम।

सुबह शाम।

चिड़ियाँ पागल हो गयी है। खौरी कुतिया भी। “दूद देखो इसके,  
सात-सात जनकर आयी है कूलर के पीछे,” नौकरानिया का मुण्ड खिल-  
खिलाता है।

“ख ख ! मैं इन चिड़िया की गदन मरोड दूगी इस कुतिया की भी,  
किसन कहा था इससे कि कि ”

“कहन से क्या होता है, आजकल इनके चन्द्रमा पर राहु की छाया है  
न ” मुन्ना कहत है। माँ रेशमी नाटकीयता से चश्मा उतारकर आँखा  
के पपाट सहलाती है। तुमने कभी किसी के हाथों पर तरस खाया है क्या ?  
मुडर पर दुबकी खना साहब की विल्ली सुरई के फूलों के बीच हँसती है।  
कुछ दूर बाद उसकी हँसी भर रह जायेगी और वह सुप्य ! माँ की बाँहा के  
नीचे पसीन के अद्व चद्राकार निशान है। बनपटियाँ कुछ-कुछ सफेद हो  
रही है। मालिनी मौसी कहती है कि जीजी, तुम अपने बच्चा को ज्यादा  
ही मोह करती हो। वे छुद मोह करन की बजाय पेट घटाने को हर सुबह  
योगिक व्यायाम करती हैं। नाश्ते में सूखा टोस्ट और काली काफी लेती है।  
एक हफ्ते तक। उस एक हफ्ते वे बच्चों, मियाँ और नौकरा पर झल्ला-झल्ला  
कर घर को लस्त बना देती है। फिर एक दिन वे कहती है कि तु हैल विद  
इट ! और आलू के परांठे और चाकलेट आइसक्रीम दावकर खाने लगती  
हैं। उन्होंने हर चीज में हाथ आजमाया है। उन्होंने एक हफ्ता टाइपिंग,  
एक महीना शास्त्रीय गायन एक साल पेंटिंग और डेढ़ साल फ्रेंच सीखी  
है। पर हर चीज को उठाते ही उन्हें लगता है कि अब उसमें रुक नहीं रहा  
और यहाँ से वे वैराग्य पर आ जाती हैं। बाहरी दुनिया से कहती हुई कि तू  
मेरे ठेग पर।



मालिनी मौसी मेरी तरफ अचमय ढग से देखकर कहती हैं कि जाखिर बार सप्ताह मे कोई अपना नहीं होता। मालिनी मौसी बचकानी अंग्रेजी में कहती हैं कि मैं से ऐसे नहीं बोलते—मैं तो समझदार लड़की हूँ न? हर बार तोना स्त्रियाँ अतत मिलकर पूछना चाहती हैं कि यह भी नहीं, वह भी नहीं तो तुम्हें चाहिए क्या? क्या चाहिए तुम लोग का? कुतूहल, असमजस और हताश प्यार से उनसे चेहरे बटोरा की तरह छलकत हैं। मैं अब प्रायः अबबारों मे घर से दूर मिलनेवाली नौकरियाँ के इस्तहार पढ़ती हूँ, विशेषताओं का मिलान करते हुए। जैसे आँखें बंद कर राम शलाका प्रश्नावली निकाली जाती है। लेखरार? यानि तमोजदार घोटियाँ, चाँक की गंध और दक्षिण सहकर्मी, जो बहुत बालत, बहुत चाय पीते और बहुत टाँगें हिलाते हैं। रिसेप्शनिस्ट—यानी एक इधर भुत्कान, पिन से अट्काई महकती साडी, रटे हुए कटास, दुहरे अर्धोवाले बाक्या की घतुरकाट, जब फासीसी मर्दाने इधर से महकते विजनस एकजीक्यूटिव जरूरत से ज्यादा पास आकर बातें करने लगते हैं। रगकर्मी? यानि हथकरघे की घोटियाँ, एक छटाँक सुरमा, चाँदी के गहने, सूजी-सूजी कीचड़ भरी आँखों-घाले पुरुष मित्र जो ऊँचे ऊँचे ठहाके लगात हैं। एक हमानी समय का जब मैं सोचती थी कि कुछ होना ही है तो द्रौपदी-सा कुछ बना जाये। नहीं / यानि आजी, रही और अब जाओ—कोई भला नहीं कोई शत्रुता नहीं—जो भी प्यार से मिला हम उसी के—पर पापे चल नहीं सकता, जो पुरुष मैंने देखे हैं न, बसा मे, घरो मे ट्रेनो मे—सब के-सब जकड़नेवाली जात के हैं। वे घरोहर नहीं स्थावर सम्पत्ति चाहते हैं जिसके चारों तरफ काँटदार बाड़ खींचकर वे बौड़ टाँग दें—आम रास्ता नहीं उठूक, कुछ जोर ही तरकीब तलाशनी होगी।

मैं बिना दस्तखत किये लौट आती हूँ। नहीं जाऊँगी। मैं पूछेगी तो हजार तरीके हैं टालने के। हूँह! मेरी ठाकर धाकर पत्थर गाली-सा उछलता है। कुछ नहीं तो एक अमद विस्म का अजूबा तो बना ही जा सकता है न? कठिन तो जरूर है यह हो जाना पर साफ-शपफाफ और अतिम हल भी तो यही है। बस।

विश्वर सजी घजी बीच रास्ते पर थी। साथ मे पाँच छ ओर।

“सोच लो अभी भी, चलोगी?”

मैंने सिर हिला दिया। फिर किशवर मेरी चप्पले पहनकर चली गयी, फदर फदर।

टन ! गजर कुछ बजाता है। समय? भय? कबूतरो का एक जोड़ा पर फटफटाकर उड़ता है, तिनके, गद तिनके। मैं अपना ही हाथ कमपर पकड़ती हूँ। हवा में अचानक घूल घनी हो गयी है। सास भी नहीं ली जा सके, इतनी। कलेजे पर सफेद-सा कुछ शिकजा-सा कुछ, बसता है। डर का रंग काला नहीं, सफेद होता है। होस्टल सुपरिण्टेण्डेंट लीला मित्रा मेरी हितचिंतिका है। मेरे कई हितचिंतक हैं। थे। लागो का मुँहपर से विश्वास उठ रहा है। प्यारे भाइयो और बहना मैं कहती हूँ यकीन मानिय कि मैं इस सबके काबिल कतई नहीं, बस जैसी आपकी श्रद्धा

“कैसी तैयारी चल रही है?” वे पूछती हैं। मेरी तलबी हुई है। पशी। अभियोग। लीला मिना, मुझे पता है कि तेरे चेहरे पर हल्की मूर्छें हैं प्यारी। इतनी लम्बी कि तू उन्हें बूस सकती है।

“हँसा मत !” लीला मित्रा की आवाज मुकीली लाल पेंसिल है। मने जो पूछा है उसका जवाब दो ! इस साल पच्चे कुछ बेहतर करन का इरादा है या पिछले साल की तरह ?”

तुझे मतलब ? यानी कि मैं साली कोई इंसान नहीं, टेलीफोन की बायरेक्टरी बन गयी हूँ ? हैं ? कि पना खोलो और नम्बर पता सब तुरंत मिल जावे। क्यू ? गिव मी वन रीजन !

‘इतनी आशाएँ थी हमें तुमसे’ लीला मित्रा की मूछदार आवाज भर्रा जाती है, “यूनिवर्सिटी में आयी थी तो हम सब तुम्हें दिखाकर कहते थे कि यह लड़की बड़ी दूर जायगी। पहले साल अच्छा भी किया पर पिछले साल ! उफ ! उफ ! मुझे कितना धक्का लगा, बता नहीं सकती !” लीला मित्रा के चौकोर चेहरे पर अध्यापनीय विपाद की थरथराहट है। पर मेरा वज्र कठिन बस कैंपता क्यू नहीं ? काँप र मन मूढ़ मेर !

“तबियत-बवियत तो ठीक है न ?” बड़े लोगों की आवाज पूछताछ के बीच यकायक नम पड़े तो मेरे भीतर की छतरे की सुई पागल होकर बचने का लाल सकेत देने लगती है। चेता चेता रे नौजवान !

घर को चिट्ठी बिट्ठी लिखती हो ?

जी !

ममी ठीक हैं ?

“जी !”

‘मेरी तरफ से याद कर देना । इतनी भली, इतनी ’

मेरे दिमाग न रिसीवर उठाकर रख दिया है, लीला मित्रा की चह-कती मँथी भरी आवाज मेरी पारिवारिक पष्ठभूमि के चाद-तारे टूगती रह जाती है । इतना गच्चा छाकर भी तुम परिवार में सुख खाजती हो लीला मित्रा ? यह भुलाकर कि तुम्हारे मा-बाप न तुम्हें अपन विजातीय प्रेमी के साथ शादी करने की अनुमति मरते दम तक न दी, और जब तक उनका अपना पटाक्षेप हुआ तो मेनोपाँज के साथ तुम्हारे हाँठों पर मूछ उग आमी थी और उसके भाये पर से बाल उड़ चुके थे, और यद्यपि तुम्हारे साम के लोग तुम्हारे अखण्ड व सच्चे प्रेम की दुहाई देते रहे, सब बताओ इस उमर में बात कभी यही रह सकती है ? यानि सब में ?

प्लेटफॉर्म पर बहुत भीड़ थी । छुट्टियाँ उमस, आधी सपन आधी खुनक । सामान रखकर मैं खिडकी के पास जा बैठी । घडघडाता किताबी ठेला आ पहुँचा—इंगलिश मैगजीन ? यू मैगजीन । मिल्स एण्ड बूस, पेरी मेसन ।

‘ये लीजिए वेबी नया करेबन !’ डेरी टटोलत उसके उत्तेजित हाथ कापते हैं । वे भुर्रीदार हैं, उसकी कमीज के फटे बफ भौड़ेपन से रफू किये गये हैं और नाखून बेतरतीबी से बटे हैं । रुआँसी होकर मैं अपना जोछा पन बापत हुए अम्मा के लिए तीन चारक रुमान, छोटेके के लिए दो खूरेज रोमाचक उपमास ले लेती हूँ जिन्हें प्रबट में उपेक्षित दिखाते हुए अतत हम सब रस ले-लेकर पढ़ेंगे । मैंने कहा न कि हम सब एक खासे डामाई परिवार के सदस्य हैं । अपनी-अपनी नाटकीयता से बाकिफ पर आदतो से लाचार । सब । सिवाय हमारी माँ के । यह नहीं कि माँ नाटकीय नहीं हैं । हैं और शायद हम सबसे दसेक डिग्री ज्यादा ही । पर व उन निष्कालिस नाटकीय सोमा में हैं जिनकी नाटकीयता में सशय और हँसी की

कोई ऐसी गद्दार फाव नहीं है, जिससे कभी भी अपनी सकुचाई पड़ताल का डर पठ पाये। उल्ट उनकी अपन और अपन नाटकीय मूल्या में अटूट आस्था देखकर मेरी सास कभी-कभी अचरज से थमी-की थमी रह जाती है। पचीस सालों से व बाबू के साथ यह गृहस्थ धर्म निवाह रही हैं और हर महायुद्ध, महामारी, आमचुनाव और जचगी के बावजूद हर साल उसी तम-यता से खाने-पीने, बपड़े और बच्चों की चर्चा करती पायी जाती हैं हर जाड़े में गाजर का हलुआ, पानी का अचार और हर गर्मी में आम का पना और मौजू की शिक्जिया बनवाती हैं। हर विगत शादी में दिये गये दहेज और तीयल के बपड़ों, गहनो के सैंटो के नमूने और माडल याद रखती है, और घर की हर शादी और जचगी की सालगिरह उनके पोरों पर टिकी हुई है। उनसे आप पूछिए कि फला आमचुनाव किस माल हुए थे वे तुरत अलों के बड़े या फलों की मसल्लों की जमतिथि स जोड़ या घटाकर सही तिथि आपका बता देंगी। आप पूछिये कि चुनाव में कौन-कौन पाटिया थी, यह उन्हें याद नहीं हागा, पर वही उस साल हुए बच्चे का वजन और उस जचगी के अय सारे ख्यौरे व आपको कम्प्यूटर की मुस्तैदी से बता जायेंगी। पति से बच्चों तक एक काल्पनिक चौक पूरकर व उसके भीतर मजे से आन बठी है और उनके ऊपर उही के चेहरे से मिलती जुलती एक पूजनीय तम्बीर टँगी है, उनके देवी अध्यात्म की। मा बस एक झटका भर देती कि हम सब नाच उठते हैं—नगिन गिन गिन, तनक धिन धिन !—हैं नहीं, थे—क्याकि जिस दिन से हम यह भाप पाये, उसी दिन से वह बात नहीं रही। बावजूद मुना चाचा के सारे ज्योतिषीय लेखे-जोने के। सुना है भृगु-सहिता बनानेवाले भृगु महाराज की फलित ज्योतिष भी कभी-कभी गड़ बड़ा जाया करती थी। तो हम तीनों भाईबहन व ही गड़बड़ाये ग्रह फल हैं, घुरी से छिटके नक्षत्र। जनाटेदार घूमकेतु। अग्निमुख उत्काएँ। अब तो बार-बार छेदे ज्ञान, धकियाकर अभियुक्त के बठघर में बीले जाने और टेंदुवा देववाकर बुलवाय जाने की नाजायज प्रक्रियाओं से गुजरते-गुजरते हम इतनी खतरनाक तौर स नाजायज हो चुके हैं कि हमारा दिमाग दरांती हो गया है और हाथ हथौडा। बावजूद इसके कि अकेले कम्पाट-मेण्ट में बठन में मेरी टाँगें अभी भी हल्के-से थरथराती हैं और बाहर प्लेट

फाम पर हलकती, हँसती, हलबलाती भीड़ को देखकर मेरे गले में मछली के काटे की तरह कुछ अटक-अटक जाता है। मुझे पूरी तरह मालूम हो चुका है कि इन हसीनाओं, और साढ़-सी चकली छातीवाले नौजवानों की तुलना में मेरा दिमाग किसी कदर बजनी और तरार है, कि जब परस्पर व्याहे जाने और प्रजनन क्रिया में लीन होने के बीच वे अपने को एक-दूसरे की छाया से भी घिनाता पायेंगे मेरा जहन जगली खरगोश की तरह फुटकता भेड़ों के आस-पास धूँधी उठाये ताजा हवाएँ सूँघ रहा होगा। पर तब तक उनके पास अपनी वंशुमार चीजें हागी उनकी पाटिया, उनके घर, उनके फूलदान, उनकी ब्रासों से चमकाई बुद्ध की मूर्तियाँ और आत्माही में भाड़ पाछकर सजायी पेंगुइन मॉडन पोएट्स सीरिज की किताबें, उनके बच्चों के चमकीले स्कूलों की चमकीली रपटें और उनके अख-बारों की सुखिया, और साल दर साल उनकी टक लेकर वे मेरी माँ की तरह हर रात दस बजे एक प्याला दूध के साथ एक चम्मच च्यवनप्राश खाकर तृप्ति से भरे हुए सा जायेंगे जबकि अघेड हाती हुई मैं सक्ण्ड स्लीपर के ठण्डे काले जंगला पर अपना छिचड़ी बाला और अस-तोप से भरा जिही मिर टिकाये रहूँगी निद्राहीन अक्ली और क्रूर—सोहा मेरी उँगलियों के नीचे ठण्डा और सख्त है। पर सोहे पर मेरी उँगलियाँ गम और कामल हैं। कम-से-कम अभी तक। पर अब तक? नहीं, उधर नहीं, बिग लियर अपने बूढ़े विदूषक से कहता है, 'उस दिशा में सिर्फ पागलपन का फैलाव है।'

"आ सकती हूँ?" मेरी मा के-म अकाट्य भानेपन में वह हँसमुख आवाज पूछती है। मैं मिथुनकर जगह बरती हूँ। होल्डॉल, टोकरियाँ सूटकस। अटंचीकस, घमस सुराही (अर रे रे रे सुढ़की! सुढ़की!) "बच्चे! उफ बहुत गर्मी है नहीं? आवाज पर्ये से जूझती है। हिलती-डोलती ट्रेन चल रही है। मेर भीतर जाँचे छायात पाछाआ की तरह परपडपटात है। मैं खलीन ग्याँ हूँ। उमस पग्रा मीघा नहीं हा रहा है। वह हम छोड़कर बम्पाटमण्य की हर दूसरी निशा को हवा धूँव रहा है। मग्न ना शायद मुझे भी बरनी चाहिए यो पर गम समाजापयोगी मोवा पर अचानक मैं ठण्ठा पट

जाती हूँ। मुझे मालूम है—मालूम है—मालूम है, कि यह गलत और खतरनाक ढंग से समाज विरोधी बात है और यह भी मालूम है कि अगर मेरी माँ यहाँ होती तो अपनी अदृश्य डोरियों में एक का झटका देती और मैं तुरंत खड़ी होकर ढगमगाती ट्रेन में अपने को सँभालती रथ की धुरी में अपनी उँगली फँसा देती। पर जनाब, आप मुझे यूँ अपदस्थ नहीं करेंगे। मैं पीछे की ओर पसरती ही नहीं, पर भी ऊपर कर लेती हूँ। जो औरतें उम्र के मौसम में छरी की तिल्लेदार नायलोन की नीली साड़ी और लाल चप्पल पहने पाँच से षण्ण के दाँव चक्का को लिये अकेले सेक्ण्ड स्लीपर के डब्बे में सफर करने का बीभत्स शौक पालती हो, पालें, मुझे उनमें कुछ नहीं करना।

पैसे को तनिक तिरछा कर वह अतस्त मुड़ती है। हवा के बहाव में तो कोई फक नहीं हुआ पर पखा तो हिल गया। तेली रे तेली, तर मिर पर कोलू! तुव नहीं मिली तो क्या हुआ, तेरा सिर तो धक गया। उसका चेहरा विजयगड से चमक रहा है—वह मुस्कराती है, मैं भी मुस्कराती हूँ, फिर मैं आँखें बंद करने का नाट्य करती हूँ। मुझे नहीं करनी पसीजते बहनापे की व्यथस्या। वह कुछ-कुछ तुतलाते हुए अपने छाट बच्चे से खेलन लगी है। जी हाँ, मुझे मालूम है कि इस दृश्य की धरेलू स्निग्धता को देखते हुए हमारी पारिवारिक अपेक्षा क्या होती।—“कहाँ जा रही हो?” वह पूछती है। उसका चेहरा अभी भी वास्तव्य से भीगा भीगा है। मैं शहर का नाम लेती हूँ। “तब तो हम लोग आपसे पहले ही उतर जायेंगे।” वह मरे बिना पूछे बताती है। फिर उसी साँस में यह पूछकर कि क्या मैं यहाँ पढ़ती हूँ वह यह भी बताती है कि उसके पति भी यही पोस्टेड हैं और यह कि अरे, तब तो तुम्हें यहाँ कभी नहीं देखा। जस कि उनके दसे बिना मेरा अस्तित्व ही सदिग्ध है। सिडी कही के। पर मरा मोना इतना मुदगुदा व सुखद है और इतनी जोरा से नींद आ रही है कि गुस्सा भी नहीं आता। अब वह एक सटबिल्ली-नी लडकी प्रभा के बार में पूछ रही है कि हमारे ही हाउस में रहती है। तुम जानती हो उसे?”

“हाँ मैं जानती हूँ” मैं कहती हूँ, अपनी वाचालता पर विमुग्ध। अचानक एक जनादेदार नाटकीय झूठ बोलने की एक वेपनाह उतावली चील

की मगह मर भीतर डेन फैलाये छा जाती है। "अरे प्रभा? वह तो मरी पक्की सहली है," मैं कहती हूँ "और पढ़ने म तो इतनी तज है कि बम।"

जच्छा? उनका स्वर सशय भरा है, पर घुष-घुष। उसकी शादी उनक चचेरे दवर से हानवाली है न। 'दघन म अच्छी है य ता मुना था, पर पढाई म—"

अरे लीजिए, इम बात को कौन नहीं जानता?" मर भीतर का लवार बगट्ट भाग निकला है, फिर मैं एक लम्बी सोदाहरण व्याख्या से समाप्ती हूँ कि दो तरह के विद्यार्थी होते हैं, एक तो रटत विद्यावाले तात जा दिन रात बितावा म मुह दुमाये अपना रग रूप तवाह करते रहते हैं और इम्तहान के दिन म यूँ लगते हैं—मैं एक चूस दशहरी आम की गुठली मा चेहरा बनाकर आँखें भेंगी कर लेती हूँ। मरी थोता ठठाकर हँसती है— "आप ता एकदम कार्टून रॉच देती है।" अब मैं अपनी बकतता के सम्मोहन म पूरी तीर से सराबोर हूँ 'एक के विद्यार्थी होने है जो कि हँसते-खेलते इम्तहान से कुल दो महीन पहले इत्मीनान से सब पढ-पडाकर इम्तहान के आते हैं। बस, घमाघम मस्तकस-दर। अब प्रभा म यही तो खासियत है। न ता वह रटतू है, और न ही फिसडकी। और फिर बेहद शालीन लडकी है। छिछोरापन ता बिल्कुल छू भी नहीं गया।' मैं माँ की आवाज म बात को धरन भावुकता का आवश्यक पुट देती हूँ। मामला जम रिया है।

हा, यही तो बड़ी चीज है" व कहती है, बरना उह बडे शहर की पड़ी लडकी लान म यही डर लगता है कि कही बहुत तेज-नरार न निकल आये। जा प्यार क्या नस पकड़ी है आसामी की। हो हो हो, मैं मन ही मन लाट रही हूँ। घर जाकर भया और छोटे का बताऊँगी कि ट्रेन म एक ठो शादी भी त करा आयी हूँ ता एकदम मर जायेंगे। यानि कि मैं और नाऊगिरी। वह भी उस सडबिल्ली प्रभारानी के लिए जो दुपट्टे से पन की रोसनाई पाछती हरवार नोटस डिक्टेट करत प्राध्यापका को अपनी एडीनामडल आवाज से टोकती रहती है—'व्हाट सर? कुडण्ड फालो!" फिर वह मुझे बहुत सारी और स्वर्णिस खबरें द डालती है कि किस तरह उनके दवर के लिए कितने कितने रिश्ते आय थे मोदीनगरवाला ने तो हिण्ट भी डाली थी कि पूरी मिल उनके नाम कर देंग, उनके और है ही

कौन ? पर देवर की एक ही 'कण्डीमन' थी कि लडकी गोरी हो और अंग्रेजी स्कूल की पढी हो। सो फिर यही हा कर दी। यूँ उनका देवर है भी बहुत कारिदा लडका। "घर गहस्त्री की तो ऐसी उस जानकारी है कि हम-तुम्ह न हो। अभी कम्पनी की तरफ स महीने भर को जापान गया ता एक तो लाया मिक्सी, एक पूरा डिनरसेट प्लास्टिक का, एक इम्पोर्टेड टेलीविजन, और सब भाभियों के लिय बूली जाजेट की साडियाँ और भतीजिया को सण्ट लिपस्टिक। अब बताओ आज के जमाने में इतना कौन मानता है ?" "सही है। कोई नहीं।" मैं गम्भीरता से बत्ती उकसाती हूँ। पर वैसे काई समझ ले कि उसे भले-बुरे की परख नहीं, ऐसा नहीं। वह बताती है, उसका तो कहना है कि शादी के बाद लडकी को कतई बाहर काम नहीं करना दगा। घर से बाहर लडकी निकली नहीं कि बिगड़ गयी। मैं पढ़नेवालियों की नहीं, काम करनेवालियों की कह रही हूँ।" वे पुचारा देती है, और हिलती ट्रेन में आश्चर्यजनक मुद्राओं में तिरछी-सीधी होती होती अन्तत आठ आँस दूध घोलकर छोटवाले के मुँह में बोटल खास देती हूँ— जल्दी पी ले, पंद्रह मिनट में स्टेशन आता होगा।" सचमुच ट्रेन कुछ देर बाद धीमी होन लगी है और मैं पाती हूँ कि मैं उनके बच्चे, टोकरियाँ दूध की बोटलें, चम्मचें और स्टील की गिलासिया बटोरवा रही हूँ। 'अच्छा नमस्त, बड़ी खुशी-खुशी वक्त बट गया, नहीं ?" मैं उनके बच्चे का गाल थपथपाती हूँ, कुछ कहती नहीं। उन्हें काई सेने आया है वे चली जाती है।

फिर गाडी चलने से पहले दो मोटी खमीरी पजाबनें मलमली दुपट्टा और चैनदार जडाऊ कणफूला समेत आकर धौंस गयी थी। कपड़े की खाल-दार अटबियाँ, माटे होल्डान। पीतल का बटोरदान, जिसके ऊपर खुरपे जितनी चम्मच खुसी है। मुझे उनमें कोई रुचि पैदा नहीं होती। अब मैं बहरी गूगी हूँ। या रब्बा। तू ही पालनहार।" एक कहती है, दूसरी ओऽम्। ओऽम्। करतीन चार ठकारें लेती है, "तूने इन्हें प्राण्टे नई खिलाने थे," वे अपनी सायिन से कहती हैं। "मेरा ब्रायगीता जाग गया।" मुझे अपनी दादी याद आती हैं, उन्हें भी इसी तरह वे तिलिस्मेहोशरवाई मज हुआ करते थे—गोला उठना, चिलक पठना, दिलघडकना वगैरह-वगैरह। और उसके उतने ही गूढ़ इलाज थे—सतवासि बच्चे को पीठ पर चलवाना



शान्तिवी नीबू का अचार चाटना, बासी मुह ताजी भूली खाना। ऐसे रोग और उनक उपचार सुनकर कई बार एबदम परामनावनानिक शक्तिनया और उडनतश्नरिया म आम्ह्या होनी शुरू हो जाती है नही ? व मुयसे कुछ पूछ रहो है शायद यह कि मैं वहाँ तक जाऊँगी। पर मैं अभी बताया न कि मैं गूगी-बहरी हूँ। कनखिया से मुझे गरियात व फिर एक-दूसरी म तल्लीन हो जाती है—फिर एक पाठ छेड दती है—

तार माता तारनी, सब दुख निवारनी।

पहसी सज्ञा तारनी, तार माता तारनी।

मेरी आँख लग जाती है।

एक जमाना था जबकि हम लोग घर पहुँचने की सही तारीख और रेलगाडी का सम्भाव्य समय आने से हफ्ता भर पहले लिख भेजत थे, वैसे ही जैसे कि एक वह जमाना था जबकि गुप्तकाल था और स्वणयुग था और लोग घरों के दरवाजे नहीं भेड़ते थे और बक्सा म ताले नहीं लगाते थे। फिर धीरे धीरे समय का मुहावरेदार चक्का घूमता गया और देखते-देखते लोग बक्सा व घरों में ताले और सिट्कनियाँ लगाने लग और हमने चिट्ठिया म व्यक्तिगत मामलो के चर्चे लिखना छोड दिया।

एक वे दिन थे, एक मे दिन हैं” बाबू नाटकीय सास लेकर कहते हैं। ‘क’ चाचा तुरत समयानुकूल दाद देते अपनी प्याली घाम लेते हैं। वे अभी अपन आध्यात्मिक गुरुजी ४ चमकीले आश्रम से महीने भर म अपनी अदरुनी बँटरी चाज कराकर लौटे हैं और गहन आत्मिक गुणा से रेडियम की सुई से चमक रहे हैं। ‘भीतर शान्ति हो तो बाहर की अशान्ति विचलित नहीं करती।’ उनकी नाभि से एक कमल फूटता है कमल पर उनके गुरु वठे हैं जिनके आश्रम म आस्ट्रेलियाई सक्करसाड स उत्पन्न गायें गोरस की गंगा बहाये है, साँड का भारत लान की सरकारी आगा व चाचा ने अपन सरकारी बल प्रताप से चाँदी के थाल पर धरकर उहे हमारे सामने दी थी। ‘मेरे दो जमन ट्रेक्टर बम्बई म याड पर रूके पड़े हैं’ गुरुजी ने बच्चा भी-सी निश्छल हँसी से कहा था ‘तुम्हारी निक्म्मी सरकार बस

आति पर आति उठाये चनी बा है है। हन्ने जो फोले एक्कबै ने  
 पले ही दाम चुकता कर दिने मे मे देजे नीद।" उन्होंने 'क' चाचा को  
 बल मार के चमड़े के बटुर ने रझा दिया था। "हो जानेगा", इतना  
 कहकर 'क' चाचा भक्तिभरी आँखें मूढ़ सने हैं। हो जाता है। उडन-  
 तगरियों। तुम्हें न देखते हुए भी मुझे पूरा मर्जोन है कि मंगलग्रह मे प्राणी  
 जरूर बसने हों। हमारे ही सरीखे। क्योंकि हम लोग से बड़ा अबूबा हो  
 ही क्या सकता है। नहीं ?

'ता समये ? अन्दर की दुनिया बल्लोवेट करो।' 'क' चाचा संजीदगी  
 से विलायती रीयमस सिगरेट का सुनहला दिलकश कश लेकर बड़े भैया से  
 कहत हैं। 'और बाहर की दुनिया आप लोग के हवाले कर दें, क्यों ?' भैया  
 तल्की से उठ जाते हैं। घर मे अचानक इतना धुआं भर गया है कि आँखें  
 नहा खोली जाती। "आप परेशान न हो भाभी," 'क' चाचा शर्म से पापी-भागी  
 हानी भास कह रहे हैं, "मैं इन लोग की बातों को बलत नहीं लेता, यह  
 तो उम्र ही ऐसी है। हम भी जब इस उम्र मे थे " मैं अकस्मि त्तरह देख  
 सक्ती हूँ कि आप जब इस उम्र मे थे तो कते रहे होंगे 'क' चाचा। तब ग  
 पत्नीदार बाल बनाये, माँ की पसंद के रवटर पहने। गमयम लहलहाता।  
 और क्या ? परदे चालू है, "गुरुजी तो कहते हैं कि आदमी को अपनी ह  
 इच्छा पूरी कर लेनी चाहिए ताकि गरीब की माँस आत्मा की मुक्ति की  
 राह न रोक सके। 'क' चाचा का प्रवचन जारी है। अजीब गति ही लगे  
 जब मुना चाचा अपना कुण्डलीशास्त्र ग्राह्य पढ़ाये भीषातग्रस्ते से पीठे से ली  
 यही साहब लगभग गिड़गिड़ाते हुए उठा पृष्ठ रहे थे कि "मैंने गुरुजी के  
 सूय का प्रवेश कब होगा, क्योंकि अब आगम क्या आता है, मरणाधीन  
 रेम' मे प्रमोशन का पस्ता काटोयावे क' चाचे है। तब भी मौन निभाती  
 सुखार मे भी वे अपने बड़े अंगर की धीमी की आवाज से गमयम की तरफ  
 पर तै धरने अस्सी विष्णुमीनर थोड़ जलने रहते हैं, कीम उमर के तब  
 बेंडोवेट को इण्टरव्यू की वीतारणी मे आती मरणाधीन मृत पन पति सपना  
 देते रहे है। पर अगर शक्ति की मजदूरी का चल नहीं हो तो तब भीषातग्री  
 बतनी ही पड़ती है। क्या भाई साहब ? मैं जानि उमर के मरणाधीन मौन  
 ओर थी। एक ता यूँ ही मंगल भीष का जान मे मजदूरी की लड़ने जहाँ निम

जाता है

‘क’ चाचा खुराटवश लेते हैं, उनका नाम इस बार जॉयंट सेन्ट्रैटरी पनल में आ गया है। अब अल्ला के किसी वदे की मजाल नहीं कि उह टम मे मस भी कर सके, “बस सेक्टर म पहुँचन की देर है। सर्विसेज का ता, भाभी, अब सारा चाम चला गया। अग्रेजा का चाहे जो कहो, आदमी की परख थी उह। आखिर जभी ता सक्डा बरस मुल्क पर हुक्ूमत कर गय।” वे धुएँ का छल्ला निवालते हैं। “कपडो का सलीका बोलने का ढंग, कुछ भी सलो, पुरान अफसर वाई म थे अफसर। क्या शालीनता, क्या रोआब वना अब तो कस-नैसे देसी टाइप टुच्चे लोग चले आते है जा या तो एक जुमला अग्रेजी भी सहो नहीं बोल सकते या बस माओ और चे का नाम लेकर अलख जगाने फिरते है। क्या अवमूल्यन हुआ है युवा पीढी का। एकदम राजनैतिक इन्वाल्मेशन नहीं।”

“और जो अपनी राजनैतिक मायताओ से जेल गये है सो?” बड़े भैया दूध के कढाव म अम्स की छट्टी-छट्टी-बूद से टपक पड़ते हैं। उनके बारे में अपनी क्या राय है?”

“सो तो नक्सली और फासिस्ट लोग हैं, जिन्हे तुम्हारी ही पीढी सर पर उठाये है।” ‘क’ चाचा तनिक तल्खी से कहते हैं। फिर उह अपने गुरु की चेतावनी और अपनी आत्मिक गरिमा का ब्याल मर्मा जाता है और वे कहते हैं कि हाँ, कुछ बार जरा धरापकड़ में ज्यादाती हो जाती है। सा यूँ कि जो आडर लेनेवाले छोटे अफसर होते हैं, बड़े दो बोडी के होते हैं (बाजार मुहावरे की बाजार दाद के लिए हमारी तरफ नजर प्रक्षेप) पर जब तक करें न पडो, शासन नहीं हो सकता, ये पाठ हमें अग्रेजा से भी सीखना ही होगा। व जंगडाई लेकर जिस्म तोड़ते हैं। अभी ये एक डेलीवेशन को लेकर लम्बे विदेशी दौरे से लौटे हैं उनके नैतिक कृतव्यभार की यकावट अभी भी उनकी रंगें चटखा रही है। शालिनीजी, आपकी मिक्सी ले आया हूँ इस बार, बस्टम्स को चरवा देकर, चले अब।’ सब लोग उठने लगते हैं।

क्या हुआ? बड़ी जल्दी आ गयी? तुम्हारे तो महीने के आधार से इम्तहान

शुरू हैं ना ? ड्राप करने का इरादा है क्या ?" छोटा बात को घुमा फिरा कर कम ही कहता है । फिर उसने सूटकेस उठा लिया, मैंने बैग ।

'नाउ ही, वह तो नहीं । शायद इम्तहान ही पोस्टपोन हो जायें, पर पक्का नहीं ।'

"वाह, तुम लोगो ने हडताल नहीं की क्या ?" छोटा घम्म-से बोलने में सूटकेस पटक देता है ।

"क्या पत्थर भर साती हो इनमें तुम ।"

"सब कहाँ गये हैं इतनी सुबह ?" मैं बूल्हे पर पसीना-पसीना गदे-लियाँ पोछती हूँ, "घर में एकदम सियार बोल रहे हैं । अम्मा-बाबू ?"

"हाँल्पीटल ।" छोटा बमतलब मक्खीमार-से दो तीन बार अनदीखती मक्खियाँ पर करता है ।

'ऐं ?' आश्चर्य से मेरा मुह शायद देहासना की तरह खुल गया होगा । छाटा तुरत मुझे यह जानकारी भी दे देता है ।

"पर क्या ममे हैं ?"

"बीमार लोग कहाँ जाते हैं, भदिर ?"

चिडचिडाहट में उसकी किगोर आवाज फट जाती है । मैं अचानक देखती हूँ कि उसकी नाक के नीचे उग रही हल्की रेख के तले उसका चेहरा कितना डरा हुआ और कच्चा है ।

'आखिर है कौन बीमार ?' मैं तनिक भुलायमियत से पूछती हूँ । बचपन में उससे तनिक-सी ऊँची आवाज करने बोलते तो अम्मा की गोदी में मुह छिपाकर पिल्ल-में रो देता था । गावदी बही का ।

"अम्मा बीमार है, और कौन । उही को तो शौक है चुपचाप ये सब रोग पासने का । वह एक रिसाला उठाता है, फिर मुझलाकर फेंक देता है । "चाय पीने का मन हो तो रुकना पड़ेगा । हरी बाजार गया है ।"

'हुआ क्या है आखिर ?'

'पता नहीं, छाती पर शायद कोई गाठ-सी मालूम हाती थी, बायोप्सी को भर्ती हुई है । दो दिन हो गये । आज कल म टाँके कट जायेंगे, वैसे आज घर आ जायेंगी । बाबू भैया लेने गये हैं ।' छोटे ने फिर कुछ बार हवा में किये और नाक सिकोड़ी, "तुम नहा धो क्या नहीं लेती ? बकरी जैसी गंधा

रही हो ।”

मैं उगे आग्नय नेपा से देखकर बाथरूम में घुम जाती हूँ। हमेशा छांट कर नाटकीय मौका चुनेंगी अम्मा भी। हर एक काम के लिए। एक तो पढाई की, इम्तहान की अनिश्चितता से सभी यूँ ही सनके हुए हैं, ऊपर से छाती पर गाँठ। मेरा साबुन पिसलकर पटले के नीचे जा घुसा। साले। तेरी ऐसी की तैसी। दाँत पीसकर मैंने हाथ फलाया। पटला पुराना था और ऊपर से साफ दिखने के बावजूद नीचे से पानी के लगातार स्पश से उसकी लकड़ी एकदम पिलपिली हो चुकी थी। नाखूना से उसका कीचड़ धोते मैंने सोचा कि अभी बाहर निकलकर हल्का मचाऊँगी। बस ऊपर-ऊपर की सफाई होनी है इस घर में, भीतर चाहे जो गूदड़ पड़ा रह। जहाँ आँख पड़े बस वही साफ करेंगे। बाह। क्या कहना। तौलिये के लिए हाथ बढ़ाते ही मैंने पाया कि तौलिया तो बाहर ही छूट गया था। दाँत भीचकर मैंने बुलकारा—“छोट—तौलिया।” कोई और वक्त होता तो कई मिनट सता-कलपाकर बेहद अहसान जताता हुआ एक हाथ तौलिया फट्ट से पानी में फेंक जाता। पर आज तौलिया चुपचाप हस्तांतरित कर दिया गया।

‘क्या रिएक्शन हुआ?’ तौलिये से बाल रगड़ती, मैं छोटे से पूछती हूँ, सामने पड़े अखबारों में बजट की मुखिया हूँ।

“हूँह” छोटे काँधे उबकाता है। “सभी को पता है वही फिर होने लगेगा।” सिर्फ तमाशा ही तो है हर बार।

‘मान लो कि फक पड़ा? तब?’

‘अखबार पढ़ती हो अभी वहाँ?’ छोटे एक बेहद फूहड़पने से बनामी चाय की प्याली रख देता है—“पढ़नी होती तो शायद” वह बात आधी छोड़कर बेहद मुस्से से पीठ धुजाने लगता है।

‘नही, सब बताओ अगर तुम बोट दे सकते तो अब किसे देते? यानि अगर दे सकते तो?’

“क्यों बतायें आपका?” कुछ देर को छोटे की आँखा में परिचित शांतानी चमकती है फिर वह भेद भरे ढंग में झुकता है “पता है इस बात पर सब साले मुह सिये हुए हैं। और ता और, हरी से भी पूछो तो टाल देता है।”

“मतलब ?”

“मतलब क्या ? अरे वोट का मतलब ही क्या रह गया !”

हम दोनो चुप हो जाते हैं। किसी भी चीज का साला क्या मतलब रह गया है ? अचानक मुझे लगा कि छुट्टियां मे घर आना कतई बेमानी था। यानि कि अगर लौटने के तिहाज से देखो तो। ‘गुड लक !’ मैं अपने आपसे कहा, ‘और दस दिन तुम्हें काटन हैं यही !’

बालो का गुच्छा जैंगलिया पर लपेटकर कूड़ेदान में डालने को निकली थी कि बार रुकने की आवाज आयी, फिर दरवाजे खुलने-बंद होने की, फिर छोटे का एलान—“सुघा जा गयी।” तब तक मैं भी बाहर थी। अम्मा बैसी ही लग रही थी। सिवा इसके कि बिंदी नहीं लगी थी और बाल उड़े-उड़े-मे थे जिनसे चेहरा कुछ बका धका-सा लगता था, बस।

“कब आयी ?” अम्मा ने कंधे पर हाथ रखा। “तारकर दिया होता। स्टेशन से घर कैसे आयी ?”

“इजनडाइवर पहचान का था, ट्रेन घर तक ले आया।”

“इस लडकी की जुबान तो ” अम्मा की बात आधी शिकायत और आधी हैसि में हमेशा की तरह जटक जाती है। वे मुझे बाहो से ऐसे घेरती हैं, जैसे मुझे नहीं मरे द्वारा बनाये गये स्पेस का आलिगन कर रही हो।

“तुम कब आये ?” मैं भैया ये पूछती हूँ।

‘दो-तीन दिन हुए,’ उड़ता-सा जवाब देकर वे बाबू के साथ सामान उतरवान लगते हैं। सामान से, अम्मा से, बाबू भैया सबसे मुझे अचानक अस्पताल की गंध आने लगी है। थकी-थीमार। बुझी-भुझी।

एक थमस लुढ़कता है।

“टूट गया क्या ?” भीतर घुसती अम्मा पूछती है, ‘एकदम नया था।’ बका हुआ अभियोग-भरा मुर।

“धीरे धीरे निकालो यार,” बाबू भीतर जाते-जाते कहते हैं। भया का चेहरा तनता है, अस्पताल की गंध और तीखी हो जाती है।

“पूर छब्बीस रुपये सत्तावन पैसे का है। समझे गाबदी ?” भया छोटे

से कहते हैं।

“सेल्स-टैक्स असम,” छाटके जोड़ता है। “वह भी पहले का लिया था, आज तो ” दोना हेल पड़ते हैं। अम्मा भीतर सेट गयी हैं। ‘चाप पिपोगी?’ मैं पूछनी हूँ।

“तही, जो नहीं है, पहले नहाऊँगी, फिर।” अम्मा आँखें बन्द कर अगर हाथ रख लेती हैं। मैं उठकर बाहर आ जाती हूँ। सावार्मि और फालतू। बाहर छोटा मेरे कमरे से मेरी साथी किताबें उलट-पलट रहा है, मैं बिचियापर उससे मिट पड़ती हूँ कि अगर किसी से पूछे उसका सामान छगाम डालना कहीं की शराबत है? कोई बिचिया भी प्रायवट नहीं इस घर में। हर चीज सार्वजनिक सम्पत्ति है। मैं गुस्से से फेड़ आवट कर जाती हूँ। छोटा किताबें पटककर उठ खड़ा होता है। फिर हुवा म तीन बार धाम्नी बार ‘जूडो के करके बाहर चला जाता है। अब वह वे किताबें कभी नहीं लेगा, हालाँकि साथी तो मैं उसी के लिए थी।

बाहर बाबू अखबार पढ़ रहे हैं, मैं भी प्रिंसिपार्ड-सी बैठ जाती हूँ। “इमसहानो का क्या हिसाब है?” वे नर्माई से पूछते हैं, छीसे-डाले से। मुझसे बातें करते वक्त उनका दिमाग हमेशा वहीं और रहता है। मैं कुछ पिटा-सा जवाब देकर रिसाला उठा लेती हूँ, बाबू अखबार की मुछिया में भीट जाते हैं।

‘टक्म तो कुछ घटे हैं इस बार।’ मैं सप्रवास जमुहाई छँकती हूँ।

“हूँ देखो क्या होता है।’ बाबू जैसे अखबार की ही खबर पढ़ रहे हैं। सभी घाट-से दरवाजा भेड़ता छोटा आता है।

‘यार जरा समीज से दरवाजे मिटाया करो।’ बाबू तल्वी से अखबार झटकारते हैं अखबार के कोने में गोभी के फूल जितना फूल जूडे में लगाये एक हसीना टेलीविजन बेच रही है। हमारे शहर में अभी टेलीविजन भी नहीं चालू हुआ है। गये साल एक सत्तर मिलीमीटर के पर्दे का सिनेमा घर भर बना है जो अभी तक शहरवासियों के लिए ताजमहल का दर्जा रखता है। हाये, कसे कटेंगी छुट्टियाँ मैं फिर जमुहाई दाबती हूँ। पहले तो हम दिन बाटन को हेरा सनीमा देख डालते थे छुट्टियों में फिर एक नया रोल लेकर घर में दखिल होते। कुछ देर की वे न?

नयी मुद्राएँ भँजाते हुए। हम सब पैदायशी एकटरे थे ही। पर्दा खोलते, भँवें उठाते, कंधे उचकाते हम सब दशकों की आँखें अपने पर महसूस करते रहते। बाबू को यह पसंद नहीं था। उनका कहना था कि जीवन में या तो आप सफल होते हैं या असफल। दम्यानी चीज कोई नहीं होती। सो बाता का गम्भीरता से लो और अब बचपना छोड़ दो। जितनी जल्द हो सके। पर हम जानते थे कि उनका यह गुस्सा भी हमारी मुद्राओं की तरह अन्ततः एक मुद्रा ही थी। मुझे बाबू पर साढ़ उमड़ आया।

‘अरे भाई, पेशेण्ट कहाँ है?’ प्यार से पानी-पानी हुआ जाता मेरा दिल तलबा तक खिसक जाता है। मारे गये बेमौत, फला का बैग उठाये ‘क’ चाचा नम्रदार होते हैं।

“आओ यार!” बाबू अचवार डाल देते हैं, मेरे भीतर खतरे का घड़ियाल टनटनाते लगता है भाइयो को चेताना होगा। आज इतवार है न, अभी दाकी लोग भी आ धमकेंगे, गये काम से।

“कहाँ है भाभी?” चाचा सुर धीमा करते हैं।

‘सो रही है शायद।’

‘सो नहीं रही है, नहा रही है।’ छोटे की किरमिची किशोर आवाज आयी।

‘अरे छोटे! भाई, जरा इधर तो आना।’ ‘क’ चाचा अपूर्ण ढग से बाबू को जाँख का इशारा देते हैं, “हम भी तो मिलें अपने एग्री यग मैन से, सुना आजकल बहुत माक्सवादी हो रहे हैं कुछ लोग।”

“छोटेSS!” बाबू की रौबिली हाँक से मेरे भीतर कुछ खिचकर दूर तक घिसटता विमुख होता चला जाता है। नपथ्य में कोई हलचल नहीं।

‘क्या उम्र है यार हम तो अपने घर में बेगाने हो गये। कल के छोकरे हैं और हमसे ऐसे पेश आयेंगे जैसे कि हमारे चचा हा। एक हमारे बड़े साहबजाद है, जिन्हें जमानत-भर के बुजुग दुश्मन लगते हैं, कभी हम-तुम भी नौजवान थे यार पर ऐसी भी क्या’ बाबू की मुद्रा अब प्रताडित पिता की है। सिर्फ उनके बदन पर साटन का ड्रेसिंग गाउन और मुह में सिगरेट भर नहीं है, बर्ना एकदम हिंदी फिल्मों के बाप लगते, अभिनय क्षमता की एमेच्योर स्तर पर भी कभी नहीं, मानना पड़ेगा। क्या चुटीले सवाद,



क्या भगिमाएँ, बाह !

मैं पैर धसीटती हुई भीतर चल दी। शुरू हा गया था फिर मे वही सब। मुझे लगा कि शायद मुझे रो पटना चाहिए। पर मैं धूब जार से ट्राजिस्टर पर विविधभारती की सुई लगा दी। यह जानते हुए कि

सुबह। मैंने आहिस्ता से बगल में अलसाते घर को उठाया, परधा, धन-से फँका, गात्र लिया, अब वह मेरी गदेलियों पर चित पड़ा था। शान्त और धपटा होकर। दुबारा उछाले जान की आशा और आशका के दरम्यान। मैं उसे वापस घर दिया और सर तब चादर खींच सी। अभी बहुत जल्दी थी, और उठ कर करना भी क्या था ? हमारे शहर में देर तक सोनवालों की नितात नभी है। हो भी क्यों नहीं ? शाम सात बजे सड़को परसाना पड़ जाता है, और रात दस बजे तक तो ऐसी बज्जर चुप्पी छा जाती है कि उस दम शहर को मूस भी उठाकर ले जाय ता पता नहीं चले। पर यह नहीं कि यह सिर्फ रात के लक्षण हैं। चरम जागृति के दुपहरी क्षण में भी हमारे यहाँ हर चीज समुद्र-तले की वनस्पतियों की तरह एक ऐसी अलस तद्रिजलता से लहराती हुई बढ़ती है जो कि-ही लावा की नजरा में बाध्यात्मक हो तो हो, पर अगर आपकी अठारह साल की उम्र कुम्भत घाड़े की तरह आपके जिह्म के भीतर छूट भागने को जमीन खूदे जा रही हो तो पागल बना देने की हद तक खिझा जाती है। अपन का बहुत उदार समझने-वाले हमारे भाँ-वाप जैसे लोग कहेंगे कि जाओ जरा घूम घाम आओ। पर सवाल उठता है कि वहाँ ? वहाँ ? कहाँ ? इस शहर के समुद्र नौजवानों की शीकीनी का चरम लक्ष्य यह कि सापटी आइसक्रीम खाने सिविल बाजार चल दिये और वहा उस अग्रेजी नाम वाले रेस्तरा की अँधेरी मन हूसियत में जा घँसे जहा हमेशा कच्चे प्याज और भुनी सीफ की अपरा देने वाली गध बसी रहती है, और शोरबे के दागों से भरा बूढ़ा बटर आडर देते ही मीनू आपके हाथ से झपट ले जाता है। या कि फिर बही सड़क किनारे नितात मनहूस किह्म की चुहलवाजिया में मुतिला हो घरामा घरामा दूकाना के विस्तार के आगे टहलत रहो—चपलें, प्लास्टिक के

चमकीले और गैरजरूरी उपकरण, भडकीली साड़ियाँ, रजाई की फद से ढंका खादी आधम, और अत मे केमिस्ट की लटटुओ म जलती-बुझती दूकान । घटत ।

दिन एक विराट जमुहाई की तरह जबड़ा फरडे सामने खड़ा था, और हम आँखें चुरा रहे थे ।

आँगन मे अभी धूप अच्छी लग रही थी । बाद को शायद तेज हो जाती । अम्मा पूछती हैं कि हम सबने ठीक से नाश्ता किया कि नहीं और आश्वस्त होकर मेरी लायी किताब फिर पढ़ने लगती है । उह इस उमर मे भावबिह्वल होकर अंग्रेजी रुमान पढ़ते देखकर राजा ययाति की तरह हमेशा मेरे बाल सफेद हो जाते हैं, “अच्छी किताब है, वे मुस्कराकर मेरी परख की दाद देती हैं । हाय री विडम्बना मानव-जीवन की अबूझ प्रहेलिका, हाय ! फिर हमेशा की तरह वे अपना यक्ष प्रश्न दुहराती हैं कि हिंदी मे ऐसा रुमान क्यों नहीं लिखता कोई ? यह नहीं कि हमारे यहाँ सामंती परम्परा नहीं, या रोमांस का अभाव हा—हँ ?

मैं फट पड़ती हूँ ।

कुछ इस तरह की बात कह कर कि—‘न कही आयेगे न जायेंगे, न अपनी उम्र के लोग मे उठेंगे-बैठेंगे तो दिन भर बड़ो से जुवान लड़ाने के अलावा सूझेगा भी क्या, ठीज है, हम लोग कितने दिन के हैं, मा-बाप होने का दण्ड तो भुगतना ही है,—अम्मा लेट जाती है, कमरे म चिलक्ता दिन भर गया है, भैया और छोटा एक एक कर जादुई बोनो की तरह अलोप हो जाते हैं, बाकी बची म—हमेशा की तरह ।

टर । टर । बाहर फोन बजा । मैंने उठाया, बुआ का था, वे अम्मा को पूछ रही थी, “अम्मा लेटी है, मैंने कहा । “क्या तन्त्रियत ठीक नहीं ?” वे पूछनी हैं । “हाँ”, मैं कहती हूँ । “जरे क्या हुआ ?” वे पूछनी हैं । “कुछ घास नहीं, छाती पर एक ‘माय’ थी, उसे निकाला गया है बायोप्सी से ।” “कुछ रिपोर्ट आयी ?” उनका सुर चिंता जिज्ञासा, कुतूहल, उत्तेजना से डंटे के थोबड़े की तरह बलबला रहा था । “नहीं, अभी मालूम नहीं बल-परसा तब रिपोर्ट आयेगी ।” मैं कहती हूँ । दखो एक शहर म रहते हैं पता ही नहीं चलता—वो ता मैं ही कभी फोन कर लेती हूँ तब कुशल मिलती है, तुम्हारे यहाँ से तो

कोई फोन करता नहीं। यही पता नहीं था कि तुम लोग आये हो।" चुप्पी।  
 "अच्छा आना फिर। आशीष, निशा तुम लोगा को याद करते रहते हैं।"  
 "अच्छा!" मैं भली भतीजी के सुर में कहती हूँ और फोन रख देती हूँ।

बुआ ने घर से हमारे घर तक एक चिलबत्ता-सम्राट-सशक्त विस्तार है जिसमें असंख्य उपालम्भ, बतकहियाँ, सामाजिक बुलावे और खानदानी विस्से पट्टी पतंगा की तरह सटके फडफडाते रहते हैं। हमारे परिवारों के बीच प्रेम और सशक्त हिकारत का जायज अनुपात क्या है हमारी समझ में अभी तक आया नहीं, पर हाँ सामाजिक अवसरों पर जात्मीय मेलजोल की औपचारिकता जरूर कायम है।

"किसका फोन था?" अम्मा आकर बाहर बैठ गयी थी।

"बुआ का।"

"नाराज थी क्या?"

"पता नहीं, हो भी तो तुम्हें क्या मतलब?"

"अरे तुम नहीं जानती, जरा-जरा सी बात से ही तो—"

अम्मा की आवाज में औरताना बतकही का भरपूर गन्धेदार फैलाव था। उन्होंने गूढ़ अम्मात्म से यह बात जोड़ने को एक सुरसुरी सास भी खींची, पर तब तक मैं उछलकर उठे फलाग गयी थी।

"अरे छोड़ो, जिस तिस को लेकर क्या परेशान होती हो। अपनी तबियत खराब करोगी और!" मैंन बिताब उठा ली।

"इम्तहान कब तक शुरू हगि?"

"पता नहीं।"

"बूछ तो खबर होगी ही।"

"मुझे नहीं मालूम बाबा। पर्व तो जितने खराब होने हैं हगि ही।" अम्मा हँसने लगी— आज तक कभी तेरे पर्व बिगड़े भी हैं, जो अब खराब हगि।

"कोई गारंटी है क्या?" मेरे भीतर फिर भददे दाँतदार बनले जानवर मेंडराने लगे थे, "या तुम्हारे मुना चाचा के ग्रह-नक्षत्र इस तरफ भी रक्षा कर देंगे?"

अम्मा इस वक्त झटप के मूड में नहीं थी, सो टाल गयी। "तुम न

‘मानो पर मुना कहते हैं कि बुद्धिबल तो हमेशा ही —’

“मान सो सिफ मुना चाचा की भविष्यवाणी उल्टी साबित करने में फेल हो जाऊँ तो ? बोलो, इसे रोक सकती हो ?”

अम्मा कतई झगड़े के मूड में नहीं हो तो नारदमुनि भी उहे नहीं लटवा सकते। वे फिर हँसने लगी।

“क्यों बेकार सुबह से लड़ने का मौका ढूँढ रही है, कही हो आ न। इतनी पुरानी सहेलियाँ है, कोई भी छोड़ आयेगा।”

“बोर है सुसरी सबकी सब।” मैं गुलेल की तरह अपने को खीचा और लद्द-से सखत पर गिर पड़ी।

“मैं बताऊँ अम्मा, तुम मेरी शादी कर दो।” मैं बेहद सजीदगी से टाँगें नचाने लगी। ‘हमारी माँ कुल चार है। एक—खूब अच्छे स्वभाव का हो, कभी भी गुस्सा न करे। दो—इकलौता लडका हो ताकि न द-फ द का दृढ़ न हो। तीन—शकल सूरत, से ठीक ठाक हो। और चार—दिमाग का भुम।’ भैया प्रकट हुए—“इतना पढ़ लिख कर भी माँगोगी वही औरतो की पत्रिकाओवाला चौड़ा चकत्ता बनमानुस। आह।”

मैंने लात चलायी, जो नहीं लगी। बहुत दिन के बाद हम सब हँस रहे थे। मैंने भीतर दूसरी जोकरी मुद्रा खुश होकर तलाशी, पर खुशी स्थायी हो कैसे सकती थी इस घर में ? तभी टर। घण्टी बजी। लो। मौसियाँ आ पहुँची थी। बच्चो, चाभियो, टोकरिया और सहानुभूति से लदी फँदी। हमने अपने आप को तुरन्त तहा लिया और इधर-उधर होने की सोचने लग।

“आज जरा घर में रोन्क-सी दीख रही है।” मालिनी मौसी बैठ गयी। शालिनी मौसी अपने पिनकते बिगडल बेटे को अग्रेजी में डाँटने लगी।

“सुधा, जरा बाहर स्कूटरवाले को पैसा तो दे आ।” मालिनी मौसी ने पस खोला।

“क्यों बार क्या हुई ?” अम्मा शालिनी मौसी की बेटी को सहला रही थी।

अरे कार की क्या पूछती हो ? पुरानी गाड़ी है हर छठे दिन गैरिज में—और फिर कभी दो सौ से कम बिल नहीं आता। हम तो सच मारे गये

इस महेंगई मे।” छोटे और भैया समझदारी से पहले ही स्कूटर को पसा देने फूट लिये थे। मैं फँसी हुई इधर-उधर ताकने लगी।

“शालिनी, तेरी आया ने क्या कुछ तें बिया फिर, रहेगी कि जायेगी?”

अम्मा के पूछने की देरी थी कि शालिनी मौसी का धमा फौवारा फूट निकला। इस वक्त उह देखकर कोई नहीं कह सकता था कि कभी अपने जमाने में वे भी एक जहीन दिमाग रखती रही हागी और सुबह तीन बजे का अलाम रखकर ई एम फोस्टर पर नोटस बनाती अब तो मालिनी मौसी के बडवे वैराग्य, मुना चाचा के नक्तानों और ‘क’ चाचा के मजाका ने उन्हें इस कदर डरपोक और पिलपिला बना दिया था कि वे अभियोगा और आसुओं से लस्त एक चपटा आकार-भर बनकर रह गयी थी। भैया का कहना था कि उनके चोट भी लगती हो तो उसमें से खून के बजाय आँसू निकलते होंगे। च्च च्च च्च। इस वक्त भी प्रसंग की प्रासंगिकता की रक्षा करती हुई मा और मालिनी मौसी उनके चारा ओर डने फैलाये मुर्गिया-सी, सात्वना देती अंग्रेजी में बडबुडाने लगी—

‘बेचारी, बड़ी परेशानी है इसकी भी—’

“वही तो, छोटे छोटे बच्चे और मदद के नाम पर कोई नहीं।’

‘कसे लाड से पली थी बिचारी।’

“सच में सोसायटी तो बदल रही है वैस्ट की तरह पर वहा की कोई भी सुविधा यहाँ घर की औरत को नहीं।”

और परेशानिया वही, ऊपर से महेंगई।”

मैं किताबें समेट कर उठने की फिराक में थी कि शालिनी मौसी ने, जो अब तक अपने दैनंदिन स्यापे से फारिम तथा पारिवारिक सबेदना से तप्त हो चुकी थी, रोक लिया—‘वहा चल दी—बठो न।’

“पढना है।”

“अरे रोज रोज का ऐसा भी क्या पढना? हम लाग कोई रोज रोज थोडे ही आते हैं।

“वठो भी, हरदम पढ लिखकर ही क्या करना है?”

‘और क्या?’ शालिनी मौसी की खतरनाक ढग से डबडवाई आँखें मुद्गर क्षितिज पर टँग जाती हैं। तीन साल पहले उहाने दबी इच्छा व्यक्त

की थी कि वे सोचती है, प्रायवेदली पढाई पूरी कर दें, पर मुना चाचा की भृगुसहिता में उन पर शनि की महादशा का अंतिम चरण चल रहा था, उसमें नये काम में हाथ डालना ठीक नहीं होना। फिर पति की मुविधा, फिर बड़े बच्चे के लिए भरोसेदार आया दूढ़ने का सवाल। 'क' चाचा की राय ली गयी तो उन्होंने गुरु-गम्भीर सुर में कहा कि हर औरत का पहला नैतिक वतव्य पति-वच्चा और सास-सुसर की सेवा हो जाता है, इसमें चूक नहीं होनी चाहिये। बाह, क्या समझ है! अम्मा गद्गद हो गयी थी। शादी नहीं की तो क्या? व्यावहारिकता की बंसी पूरी समय है चाचा को, छोड़ो यह सब कुछ। बहुत है भगवान का दिया, तुम्हें जरूरत भी क्या? फिर तभी शालिनी मौसी के पेट में दूसरा बच्चा आ बैठा और बात इधर उधर हो गयी।

मैं फिर उठती हूँ।

“बैठो न।” मालिनी मौसी का सदाशय प्रेम मुझे चटखा जाता है।

“दुबली हो रही हो इस बार।” वे हर बार की तरह कहती हैं। पढाई बहुत धर रही हो क्या?” नहीं, ऐसा तो नहीं, कुछ इस तरह की बात मैं कहती हूँ, पर मालिनी मौसी की रवि अब मुझ में नहीं है। “सच जीजी, मैं तो अपने इस बड़ते वजन से तंग आ गयी—” वे अम्मा से कह रही हैं। अम्मा हमेशा की तरह प्रतिवाद करती हैं कि ऐसा कहा? तब तक शालिनी मौसी को भी अपने बड़ते वजन का खयाल आ गया है। फिर वे अंग्रेजी की किसी गहोपयोगी पत्रिका में छपे वजन घटाने के नुस्खा की चर्चा करने लगती हैं। मैं सप्रयास जमुहाई रोकती हूँ, ‘अब किस क्लास में है पिण्डू?’

शालिनी मौसी दाना हाथा से भकाभक दालमोठ मुह में ठूसते अपने पुत्र पर एक करण दृष्टिपात करती हैं—“थड मे है।”

‘क्या-क्या पढत हो पिण्डू’ —मुझसे बात निकलते ही मुझे अपने प्रश्न की सदाशय निरथकता चुभती है। यही प्रश्न घर के हर बड़े ने घर के हर बच्चे से कभी न-कभी पूछा होगा, और शायद ही कोई बच्चा इसका जवाब देना चाहता होगा।

‘जीजी को बताआ न, वह उत्तर का इंतजार कर रही है—’ शालिनी मौसी अंग्रेजी में कहती हैं। अपने बच्चों से हमेशा जहां तक याद

रह वे अंग्रेजी में ही बोलती हैं। पिण्डू चुपचाप छाता रहा। मैं होनी तो मैं भी यही करती। शाबाश बच्चे! तुम्हारे सख्य ठीक-ठाक हैं अभी तक।

“स्कूल अच्छा है?” मैं प्रश्न माँ की ओर मोड़ती हूँ। मर उतर पाने से पहले एक क्षण की आवाज के साथ दालमाठ की प्लेट पग पर गिर कर टुकड़े-टुकड़े हो जाती है। पिण्डू भय में जड़ खड़ा है। विद्युत् गति से उसकी माँ दो तमाचे देती है। “यू स्टूनिड ऐस।” “स्टूनिड योरसेल्फ।” पिण्डू रोते रोते चिल्लाता है। शालिनी मौसी भी चीखने चीखते रो पड़ती है फिर अम्मा और मालिनी मौसी कुछ नहीं-हुआ-बच्चा ही-तो-है, से माता को और-अभी इत्ती-बड़ी प्लेट दालमाठ दोगे, से पुत्र को एकसाथ चुपान का निष्फल प्रयास करने लगती हैं—नेपथ्य से छोटा भैंव उचकाकर मूक इग्निस से पूछता है कि अब क्या हो गया? वैसे यह नयी बात नहीं न ही सचमुच इससे किसी का कुछ हाता-हुवाता है। यह छोटे छोट्टे धाकये भी इस शहर की ठस जिन्दगी न एसबलायें तो य उकताई माँमें पागल न हो उठें? हरी दालमाठ की दूसरी प्लेट और कुछ मीठा रखकर किचें बंदोर ले गया है एक अंतिम आग्नेय दृष्टि अपने बच्चा पर डालकर शालिनी मौसी फिर मामा-य हो चली हैं। बात महंगाई पर उतर आयी है। पूरा नहीं पड़ता, ऊपर से रिश्तेदारों की आवत जावत और अंग्रेजी स्कूलवाला की माँगें—आज फर्ना सेण्ट का उत्सव है तो आज पोप का जन्म दिन है—और हिन्दी स्कूल ऐसे हैं कि दो वाक्य अंग्रेजी के सही नहीं बोल सकता उनका प्रिंसिपल भी। बच्चों का भविष्य तबाह करना हो तो वहाँ भेजा। काश हम इनको बाहर कहीं हास्टल भेज सकत। उनके वषतव्य का कथित सुर अम्मा का कलेजा हिला जाता है—फिर वे नम्राई से समझाने लगती है कि ईश्वर जा है उस पर भरोसा रखना चाहिये, यह जीवन जो है एक आल्मारी है, देर मखेर इसके सभी पाने भर ही जायेंगे। वस धीरज रखो। बाकी तो सब माया जाल है—मन का विवेक और आत्मा की शुद्धि—मैंने कान बंद कर लिये हैं और झटके से उठ पड़ी हाती हूँ— पड़ना है। मैं भुनभुनाती हूँ। भया और छोटे गायब हैं। दगाबाज बही के। हुँह। जीवन एक आल्मारी है। आज का विचार—थाट फार द डे।

“क” चाचा भी दीवानखाने में आ गये थे शायद। हम पारिवारिक आवाजा को फड़फड़ाते अखबार के नीचे दबाते हैं, पर कान हम तीनों के उधर ही लगे हैं। अखबार में बेतहाशा खबरें छपी हैं—अल्पसङ्ख्यका के अधिकार, जनता का हाहानार, महिलाओं का चीत्कार, सषप की पुकार—सामुदायिक/ध्वज पूजीनिवेश। बजट-बजट-बजट। वहाँ वे लोग भी शायद इसी के चक्कर रहे हैं। अम्मा कहती है कि मुना चाचा अगले दो साल तक देश के नक्शों की स्थिति में कोई परिवर्तन नहीं देखते। नहीं देखते कि नहीं चाहते? हैं? बोलो। पर, अम्मा बात बढ़ाती हैं, विक्ल ही क्या है देश के पास? फिर वे कुछ रुककर अपने गुरु गम्भीर स्वर में चार हजार पाँच सौ छप्पनवी बार अपने जीवन-दशन का रुपहला ज्ञानमुक्ता दिखाती हैं, “तोड़ना तो बहुत आसान है, पर मैं पूछती हूँ कि जो हमारी यगरपीठी ताँडे जा रही है, तोड़े जा रही है, उसे ‘रिप्लेस’ किससे करेगी? यानी एक हमारी सङ्कृति है, एक मर्यादा है, एक ”

“अब यह पीढियों का टकराव तो एक चक्र-सा है ” एक धकी आवाज कहती है, “चल गया चल गया—इकना तो मुश्किल है इसका। सवाल है कि क्या कुछ तरक्की हुई है? देखकर तो”—“नहीं नहीं, ऐसा नहीं।” सरकार के बफादार ताबेदार गम्भीर स्वर दश के स्वर्णिम सामुदायिक आँकड़े दे रहे हैं—“जो हड़तालें स्पगित हुई, जो उत्पादन बढ़ा, जो जनसङ्ख्या में घटती हुई, जो हिंसा और गुलगपाड़े में कमी हुई उसकी कदीलें देश के अँधेरे में कैसे जगमगा रही हैं। बताओ! अगर ऐसे लोग न होते तो कभी तुम लोगों को इतना मालूम हो सकता था क्या? कि सरकार बहादुर अपनी प्यारी अबाम के लिए—”

‘अब ऐसा है भाभी’—जभी क’ चाचा की नक्की आवाज उभरती है, ‘कि अपने-अपने दृष्टिकोण की बात है। मेज पर एक अधभरा गिलास हो तो आप यह भी कह सकते हैं कि यह तो आधा भरा है या यह तो आधा खाली है पर अब आजकल आपका-सा सरल और आस्थावान अपने देश में बिरला ही होगा जो कहे कि गिलास तो आधा भरा है। ज्यादातर तो यही कहेंगे कि यह तो खाली है। क्यों साब, क्या मैं कुछ गलत कह रहा हूँ?’ एक चिपचिपा और गाढ़ा अनुमोदन शहदकी धार की तरह कमरे



में फँसता है। 'क' चाचा कुछ रुककर फिर बोलने लगे हैं—“हमारे गुरुजी का कहना है कि जीवन एक मुट्ठी है।”

**हठेरी** कया दिन आये हैं ! जीवन न हुआ जादूगर का कमाल ही गया। कभी सुख-आलमारी बन जाता है तो कभी मुट्ठी !

‘जितना इसे कसकर बंद रखोगे उतना ही भीतर से घाली रहेगा, जितना फैलाआग उतना ही भरेगा। क्यों भाभी ?’ फिर बात उनके गुरु के गहन इन्द्रियातीत ज्ञान और रहस्यवाद की ओर मुड़ जाती है।

“किसी ऐसे-वैसे नहीं, रायल खानदान के हैं गुरुजी। पर सा ब, मानते हैं अपन ईस्टन रहस्यवाद का लोहा हम भी। पश्चिम में रखा ही क्या है ? बस अनाप शनाप भौतिकता—”

‘वही ता मैं भी कहती हूँ रुपय पैसे से क्या हाता है ? असली चीज तो आत्मा की शांति है। अब मेहगाई के चर्चें लुप्त हो गये हैं गहन अध्यात्म एक अगरबत्ती की तरह हर सदाघ को ठकता भहक रहा है। कोई कहता है कि अंग्रेज तो अब पिटी हुई कौम है साहब। उनके दिन तो गये। कोई तुरत चेंपी देता है कि अमरीका भी अब रोमन साम्राज्य की तरह पतन के कगार पर है—उन पर अपने कर्मों का वज्र शीघ्र ही गिरेगा। इटली भी ता। जमनी भी तो। जापान भी ता।’

‘साज्ज, भौतिकता की तो हार होनी ही है। अंत में रह जायेगा सिर्फ प्रेम और विश्व-धुत्व।’ ‘क चाचा कुछ चुभलाने के लिए रुकते हैं—

‘पिछले दिनों जब मैं फ्रांस में था, एक बूढ़ी मुझसे लूत्र में कहने लगी कि उसकी दिली तमना है कि वह अगला जन्म यदि ले तो भारत में। दुनिया की समस्याओं का हल अगर अतंत कहीं से निकलेगा तो इसी तीसरी दुनिया से। बाबू की नपी-तुली आवाज अंग्रेजी में कहती है—‘विकास शील देश ही दुनिया की आर्थिक व्यवस्था संभालेंगे और नयी मूल्यव्यवस्था देंगे। यह याद रखना !’

इतनी भारी-भरकम उदघोषणा के बाद कुछ देर कमरे में सनाटा रहता है—फिर हरी कुछ गम ले आता है और वातचीत नये जोश से फूट निकलती है “अंग्रेजी तो आप हटा ही नहीं सकते,” मालिनी मोसी अपना प्रिय मुद्दा दाहराती हैं ‘आज जब बाहरी शिक्षा से जुड़ने की एक मात्र बड़ी

अंग्रेजी है तो आप उससे विमुख हो जायें, ये कहीं का 'याम है ?' "राजनैतिक प्रीपेगण्डा है जी मव ।" उनके पति तलबी से दोहराते हैं, "इन सब हिंदी-प्रेमियों के बच्चे किन स्कूलों में पढ़ते हैं जरा यह तो पूछकर देखो ।"

"और, तहजीब तो बिल्कुल इन हिंदी स्कूलों में नहीं," शालिनी मौसी अंग्रेजी में कहती है। उनका बेटा अभी दो प्लेट पकौड़े, अनेकानेक टुकड़े मिठाई के व चार थप्पड़ खाकर सोया है ।

फाडस । बड़े भैया तरखी से अखबार पटक देते हैं। हरी आकर कहता है कि माजी हम तीनों को चाय पीने को वही बुला रही हैं ।

"कह दो हम यही पियेंगे ।" बड़े भैया मेरी बाह पकड़ लेते हैं, "ठहरो, तुम नहीं जा सकती ।"

"ठहरो, यह शादी नहीं हाँस सकती ।" छाटे गम्भीर चेहरा बनाये दुहराता है । हमारी हसी छूट जाती है ।

हरी शामद भरी सभा में हमारे निमन्त्रण को अस्वीकार करने की बात कह रहा है—अचानक वहाँ सनाटा छा जाता है । हम तीनों बर्र की तरह डक बेताये तैयार हैं । कुछ देर फिल्म के 'स्टिल' की तरह सब आघा-अधूरा टँगा रहता है, फिर प्यालियों की छनखनाहट के साथ बातचीत चल निकलती है—

"फशन है फशन" कोई कह रहा है । "बस भेड चाल है जी । कोई आदर्शवाद वगैरा नहीं रह गया, सब पश्चिमी पढाई , एक हमारा भी जमाना था, अंग्रेजी हमने भी पढी थी, पर यह धाडे कि अपनी सस्मृति कपिटलिज्म सिनिसिज्म मर्यादा । ऊँच नीच की समझ अनुभव ज्ञान "

'क' चाचा अपना आचायत्व भरा गला धँखारते हैं । कमरा विराट सद्घोषणा के इतजार में चाय-पकौड़े तिलकुट और मठरियाँ चुभलाता है —"दरअसल बात ये है " 'क' चाचा कहते हैं, "कि आजकल की युवा पीढ़ी के डोल में एक बहुत बड़ी पोल है (सामूहिक हाम्प) वह यह कि उनका कोई दशन नहीं, अगर कोई है तो यही कि हर कोई अपनी फिकर करे । माँ-बाप भाई-बहन जायें कहीं भी, उन्हें क्या ? देश, धर्म, सस्मृति इनके लिए कुछ नहीं । क्या भाई साँव, कुछ गलत कहा मैंने ?" अब शमा शालिनी



फोन बजता है—ट्रि ट्रि !

चुप्पी—ट्रि ट्रि !

बाबू फोन उठाते हैं।

बाबू फोन रफ़ता हैं।

बाबू कहते हैं कि अम्मा की रफ़ट आ गयी है और राय ठीक है। पैंसर  
पर कोई पिशाच जगकी गाँठ में नहीं मिला। उम्मा रयर इन्मीमान से बचा  
हुआ है। बगुनी। फिर अम्मा हँसती हुई कहते लगती हैं उह तो पहले ही  
यकीन था कि कुछ निषेधना नहीं, क्याकि मुना न तो उनकी कुण्डली देख-  
कर कहते ही बहू था कि अभी घड़ी शरयत्रिया का योग नहीं है।

“भरे हरी, जरा चाय और लाना !” ‘क’ चाचा मुसकारते हैं, “जरा  
स्पेशल लाना इस बार, समझे।” बमरा लाना की चहचहाहटो से फिर भर

। भैया लपककर कुर्सी से छूट निकलते हैं और बस-ली की  
र छोटे की गदन पर ‘कराटे’ का हवाई धार करते हैं।  
टाटा उछलकर हवाई कलामाजी खाता है और उनका धार  
र चलाता है।

ऊठ सेती हैं।

एक साथ धराशायी हो ऐसे तिसमिलाने  
देखी है।

०००

)

मौसी के पति के सामन है, य, जसा कि उनकी आदत है, तुरत पानी के बंगन बन जाते हैं। सुन्नने का तत्पर,—'अजी एन्थम साय टन की बात है। हम तो मातिनीजी से कह ही रहे थे हाल म ही, कि बेहतर हो कि अब हम लोग वे बुझाये की साठीवाले अरमान भूल जायें। इन बच्चों का माया-मोह ही तो सारे बप्ट की जड़ है। आज हमें यूँ बसपा रहे हैं, बस जब हमें जरूरत होगी तो य उठनछू।' यार, तुम्हीं निकले समझदार कि शादी-म्याह-बच्चों का जजाल नहीं पाला। क्या कहत हैं उसे कि क्या नाम, जोरु न जाता, अल्ला मियाँ से माता।" प्यालियाँ फिर धनकने लगती हैं। झन ! कुछ गिरना है। छोटे न कुछ गिराया शायद।

अचानक मुझे लगता है कि हमी निरे गावदी थे, अरे कतई मूय थे हम, जो इतने असें से अपने निरीह माँ-बाप को ही कोसते रह गये। असली दुश्मन तो हमारा आज नकाब उतारकर सामने आया है। यह भेदिया-नेस्टापो 'क', जो खुद को पारिवारिक जिम्मेदारियों से बचाने को शतुर्मुख की तरह अपनी घुराई गदन गुर धरणों में रोप देता है, और अपने गुप्त अरमानों का भद्दा जेबी सस्वरण लिये तान में छिपा रहता है कि ज्यू ही अंधियारे गलियारों में से कोई घबराया हुआ माँ-बाप का जोड़ा नमूदार हो, उसे उनकी छाती पर तानकर पूछे—कि क्या तुम सब में अपने बच्चों के प्यार में यकीन करते हो? विश्वासघाती नीच, परमात्मा का कुत्ता, जब कि देश के सत्तर प्रतिशत निसान भूमे पेट गुजारा कर रहे हा, यह अपने पाछण्डी गुरु को सरकारी अनुदान से उत्तम नस्ल के आस्ट्रेलियाई साँब और जमन ट्रैक्टर दिसवाता है। इसी के हाथों में उन समाम खिसियाई बिल्लियों का शिखर नेतृत्व है जो केन्द्रीय सरकार की औद्योगिक विकास जैसी गूढ़ परिवर्तनों की रूपरेखा बनाती या आपात्काल में बीमार इकाइयों के लिए नियंत्रण अधिकारी नियुक्त कराती हैं। इसी के ट्रक और न रकने वाले बुलडोजर गरीबों की झुगियाँ झोपड़े ढहाने, फिर मोतिया की माला और घूप का चश्मा लगाये अपनी समाजसेवी कृपानिधान बीविया को सरकारी सेव का चुहचुहाता अगरेजी मरहम पोतने वहाँ भेजती हैं।

यही है हमारा थोया अध्यापक, हमारा काइयाँ अफसर, हमारा ढागी राजनेता और हमारा घूसखोर बाबू।

फोन बजता है—ट्रि ट्रि !

चुप्पी—ट्रि ट्रि !

बाबू फोन उठाते हैं।

बाबू फोन रखते हैं।

बाबू कहते हैं कि अम्मा की रपट आ गयी है और सब ठीक है। कसर का कोई निशान उनकी गाँठ में नहीं मिला। उनका स्वर इत्मीनान से था हुआ है। चुप्पी ! फिर अम्मा हँसती हुई कहने लगती हैं उन्हें तो पहले ही मकीन था कि कुछ निकलेगा नहीं, क्योंकि मुना ने तो उनकी कुण्डली देखकर पहले ही कहा था कि अभी बड़ी शल्यक्रिया का योग नहीं है।

“अरे हरी, जरा चाय और लाना !” ‘क’ चाचा बुलकारते हैं “जरा स्पेशल लाना इस बार, समझे !” कमरा लोका की बहबहाहटों से फिर भर गया है।

“है इक्”। मैया सपकवर कुर्सी से छूट निकलते हैं और बसन्ती की छूबार मुद्रा बनाकर छोटे की गदन पर ‘कराटे’ का हवाई वार करते हैं।

“हउपू !” छोटा उछलकर हवाई कलाबाजी खाता है और उनका वार बचाते हुए एक दुलत्ती मुझ पर चलाता है।

“हा !” मैं उसे पीछे से जकड लेती हूँ।

और अब हम तीनों उछलकर एक साथ घराशायी हो ऐसे तिलमिलाने लगते हैं, जैसे हम गहरी मरणांतक चाटें आयी हो।









## मृणाल पाण्डे

जन्म 1946, मध्य प्रदेश में ।

शिक्षा 1966 में प्रयाग विश्वविद्यालय से अंग्रेजी में एम ए ।

मध्यप्रदेश के विभिन्न कॉलेजों और फिर अमेरिका और यूरोप में पढ़ाने के बाद आजकल नयी दिल्ली के जीसस एण्ड मेरी कॉलेज, में अंग्रेजी की प्राध्यापिका हैं ।

अपनी रचनाओं के बारे में उनका कहना है—  
अपनी ओर से बहुत ईमानदारी और मेहनत से बनाती हूँ जिसमें मेरे दिमाग का ब्लड ग्रुप, मेरी अस्थि काशिकाएँ मेरी मज्जा है जरूर, पर इसके बाद रचना रचना है और मैं मैं हूँ ।